

मई १९९८

बूकर पुरस्कार प्राप्त भारतीय रचयित्री

अरुंधतिराय से रचित ''दि गाड आफ स्माल थिंग्स'' नामक उपन्यास को गौरवशाली बूकर पुरस्कार प्राप्त हुआ। इंग्लैंड, अयरलांड तथा लगभग पचास कामनवेल्थ देशों में १९९७ में प्रकाशित १०६ उपन्यासों में से ''दि गाड आफ स्माल थिंग्स' उत्तम चुना गया। विशिष्ट बात यह है कि अरुंधतिराय का यह पहला उपन्यास है।

अरुंधतिराय का जन्म ३७ वर्ष पहले केरल राज्य के कोट्टयम जिले के आयामने नामक गाँव में हुआ। ये पुलियं पह्लिल परिवार में जन्मीं। इनके दादा जान कुरियन सरकारी इंजनीयर रहे। अवकाश-ग्रहण के बाद ये ईसाई मत के प्रचारक बने। रेवरेंड फाथर कुरियन के नाम से उस प्रदेश में प्रख्यात हुए। तब की ब्रिटिश सरकार ने उन्हें राव बहादुर का खिताब देकर सम्मानित किया। अरुंधति के पिता षिह्लांग की चाय के बगीचों के यजमान थे। वे वहीं जन्मीं। उनकी प्राथमिक शिक्षा आयामने में ही शुरु हुई।



अरुंधति बाल्य-काल से ही प्रकृति के परिशीलन में अमित आसक्ति दिखाती रहीं। सहज सौंदर्य से भरे प्राकृतिक दृश्यों के लिए प्रख्यात है केरल। इन मनोहर दृश्यों ने उनके सौंदर्य की प्यास को और बढाया। उनके उपन्यास के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

''आर्किटेक्चर'' उनका प्रधान पाठ्यांश था और इसमें उन्होंने उच्च शिक्षा भी पायी, किन्तु उस पेशे में उनकी कोई अभिरुचि नहीं रही। उनकी दृष्टि साहित्य की ओर झुकी। चलचित्रों के लिए उन्होंने लिखना शुरु किया। उनसे रचित कथाओं के आधार पर तीन चलचित्र भी बने। उन तीनों चित्रों में प्रधान भूमिका भी उन्होंने निभायी।

इसके बाद उन्होंने यह क्षेत्र छोड दिया। अच्छी कथावस्तु को लेकर वे उपन्यास लिखने लगीं। छे सालों में उपन्यास पूरा किया।

उनकी माँ मेरी राय कहती हैं ''बचपन से ही अरुंधति को सदा पढने रहने की आदत है। उसके अध्यापक भी उसकी इस आदत पर आश्चर्य प्रकट करते थे। इसके जन्मदिन के अवसर पर भेंट में मैंने एक टाइपरेटर खरीदकर दिया। कुछ साल बाद उसने 'डेस्क टाप कम्प्यूटर' खरीदा। उसीपर उसने 'दि गाड आफ स्माल थिंग्स' को टाइप किया।''

इस उपन्यास की कथावस्तु एक लडका और एक लडकी (जुडवों) की जिन्दगी की है। उनके परिवार का और उस समाज का चित्रण इसमें है, जिनके बीच में वे पले और बडे हुए। उनके सातवें साल से उपन्यास प्रारंभ होता है। कथा-स्थल अयोमने है। कथा-काल लगभग १९६०। अरुंधति का मेल-जोल जिन व्यक्तियों से था, वे ही इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं।

पूरा लिखने के बाद अरुंधति ने अपना उपन्यास इंग्लैंड के कुछ प्रकाशन संस्थाओं के प्रतिनिधियों को दिखाया। इसे प्रकाशित करने के लिए बहुत संस्थाएँ आगे आयीं। अंत में तीन करोड रुपयों का पारितोषिक चुकाकर हार्पर्स कोलिन्स प्रकाशन संस्था ने अप्रैल मास में इसे प्रकाशित किया। बूकर पुरस्कार के लिए जब यह उपन्यास चुना गया तब तक संसार भर में ३५,००० प्रतियाँ बिक चुकीं। संसार की पंद्रह भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। बीस और भाषाओं में इसका अनुवाद होनेवाला है। बूकर संस्था ने घोषणा की कि पुरस्कार स्वरूप १२-५ लाख रुपये दिये जाएँगे। यह घोषणा उन्होंने अक्तूबर, १४ को की।

पच्चीस सालों के पहले स्थापित बूकर पुरस्कार प्राप्त करनेवालों में से अरुंधतिराय चौथे भारतीय हैं। १९८७ में सालमन रुष्डी (मिड नैट्स चिल्ड्रन) १९७५ में रुत प्रवेर जाबवाला (हीट एण्ड इस्ट) १९७१ में वी.एस. नैपाल (इन फ्री स्ट्रीट) ने बूकर पुरस्कार पाया। बूकर पुरस्कार-प्राप्ति के पूर्व ही ये भारतीय रचयिता इस क्षेत्र में सुप्रसिद्ध थे। किन्तु अरुंधति राय का अपने प्रथम उपन्यास के लिए ही पुरस्कार प्राप्त करना प्रशंसनीय विषय है।

पुरस्कार-प्राप्त अरुंधति राय से जब उनका अभिप्राय पूछा गया तो उन्होंने हँसते हुए कहा ''यह कोई उत्तम उपन्यास नहीं है। शेष उपन्यासों से भाग्यवान अवश्य है।''



पितृभक्ति

सुदर्शन सनकी था। जो मन में आता कर बैठता था। बड़े लोगों की बातें सुनने तैयार ही नहीं होता था। परंतु वह जो काम करना चाहता था, उसके बारे में आप ही आप भली भांति सोचता-विचारता था। फिर निर्णय पर आता था। निर्णय ले लेने के बाद उस निर्णय में किसी प्रकार का परिवर्तन करने वह तैयार नहीं होता था। कोई कुछ भी कहे, सुनता नहीं था। उसकी विचार-पद्धति कुछ निराली होती थी। किसी प्रकार का नूतन प्रयोग करने पर भी वह झिझकता नहीं था। अपने बेटे के इस व्यवहार पर उसका पिता प्रभाकर बहुत ही दुखी था।

प्रभाकर बुद्धिमान था और व्यावहारिक भी। साथ ही अच्छे स्वभाव का भी। परंतु वह भी अपने बेटे की तरह सनकी था। लोग कहते रहते थे कि उसी से उसका बेटा भी ऐसे स्वभाव का शिकार हो गया।

''हाँ, मैं मनचला हूँ, परंतु रीति और परिपाटी का अनुसरण करता हूँ। मैं अपने पिता के प्रति भक्ति-भाव रखता हूँ। आज मैं खुशहाल हूँ, इसका कारण केवल मेरी पितृभक्ति ही है। मेरा बेटा भी मेरा अनुसरण करे, मेरे अनुभव का लाभ उठाये, तो बहुत ही अच्छा होगा।'' प्रभाकर कहता रहता था।

सुदर्शन चाहता नहीं था कि किसी दूसरे के अनुभव से कुछ सीखूं। उसका दावा था कि स्वानुभव से बहुत कुछ सीखा या जाना जा सकता है। उसके बचपन में उसे आग छूने से मना किया, परंतु आग छूने के बाद ही उसे मालूम हुआ कि आग जलती है। तभी उसने बड़ों की बातों का विश्वास किया। जब वह थोड़ी और बड़ी उम्र का हो गया, तब लोगों ने उसे बताया कि गाँव के तालाब में मगरमच्छ है तो यह जानने तालाब में कूद पड़ा कि सचमुच उसमें मगरमच्छ है या नहीं।

सुचित्रा

बेचारा किसी तरह बच निकला।

परंतु हाँ, सुदर्शन के उद्दंड स्वभाव के कारण थोड़ी बहुत भलाई भी हुई। उस गाँव में मंगला नामक एक विधवा बहुत बड़े घर में रहा करती थी। वह अचानक रोग-ग्रस्त होकर मर गयी। उसके दूर का एक रिश्तेदार वह घर बेचना चाहता था, लेकिन इतने में अफ़वाह फैली कि उस घर में मंगला भूतनी बनकर घूम-फिर रही है। दूर का वह रिश्तेदार कम दाम में ही सही, घर बेच डालना चाहता था, किन्तु कोई भी खरीदने के लिए तैयार नहीं था। सुदर्शन वह घर खरीदना चाहता था, पर पिता ने मना कर दिया। तब वह अकेले ही तीन रातें उस घर में गुज़ारीं और उसने साबित कि तथाकथित ऐसी कोई भूतनी उस घर में नहीं रहती। पिता से उसने वह घर खरीदवाया।



प्रभाकर को इस बात पर आनंद हुआ कि बेटे के कारण भलाई हुई। जब उसका यह साहस-पूर्ण प्रयोग सफल हुआ, तब से सुदर्शन पिता की बातें सुनने के लिए तैयार ही नहीं होता था।

प्रभाकर दस एकड़ों की उपजाऊ जमीन का मालिक था। बड़ी ही दक्षता से वह खेती-बाड़ी कर रहा था। उसका समझना था कि बेटा उसका साथ देगा तो दस एकड, बीस एकड हो जाएँगे और गाँव में वह बड़ा किसान बन सकेगा।

परंतु सुदर्शन की विचारधारा कुछ और ही थी। वह सोचता था कि खेती में आखिर मिलेगा भी तो क्या मिलेगा? कितनी भी मेहनत करो, जहाँ हैं, वहीं होंगे। अगर इतनी मेहनत व्यापार में की जाए तो साल भर में कम से कम लाख रुपये कमा सकते हैं और सुखपूर्वक जीवन बिता सकते हैं। उसने एक दिन अपने पिता से कहा भी कि थोड़ी-सी जमीन बेच दी जाए और वह रक़म उसे दी जाए तो शहर जाकर व्यापार करूँगा। उसने अपने पिता से ज़ोर देकर कहा ''खेती करते रहने से आखिर हमें क्या मिलेगा? जहाँ है, वहीं सड़ते रहेंगे। हमारी कोई आर्थिक उन्नति नहीं होगी। आदमी को चाहिये कि वह कुछ नये प्रयोग करे और अपने को उन्नति के पथ पर ले जाए। वह कुछ कर दिखावे, तभी उसका जीवन सफल व सार्थक कहा जा सकता है।''

तब प्रभाकर ने अपने बेटे को समझाते हुए कहा ''बेटे, व्यापार हमारे परिवार को रास नहीं आयेगा। हम जो कहना चाहते हैं, साफ़-साफ़ कह देते हैं; मुँहफट हैं। हम नीति और ईमानदारी में विश्वास रखते हैं। व्यापार



में कमाना हो तो थोड़ा- बहुत कपटी होना आवश्यक है। धोखा दिये बिना कमाया नहीं जा सकता। झूठ भी बोलना पड़ता है। अगर हम इनसे दूर रहें तो हमें किसी भी स्थिति में सफलता नहीं मिलेगी। खेती करोगे तो मेरा अनुभव भी तेरे लिए उपयोगी सिद्ध होगा। किसी भी क्षेत्र में प्रवेश करने के पहले उसमें अनुभव की ज़रूरत पड़ती है। व्यापार में तुम्हारा कोई अनुभव नहीं। मैं भी नहीं जानता कि आखिर यह व्यापार है क्या ? इसलिए मेरे अनुभव का फ़ायदा भी तुम उठा नहीं सकते। कृषि हमारी परंपरागत वृत्ति है। इसमें उतार-चढ़ाव कम होते हैं। मेरी बात मानों और यहीं रहकर खेती करो, मेरा साथ दो।"

अपने पिता की बातों पर हँसकर सुदर्शन ने कहा "ज़रूरत पडी तो व्यापारी के लिए जो लक्षण चाहिये, सब सीख लूँगा। व्यापार में कामयाबी पाने के लिए कुछ भी करूँगा। अब रही आपके अनुभव की बात। उसकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं। अगर खेती करूँ भी, मैं आपका अनुभव उपयोग में नहीं लाऊँगा। आप तो व्यापार का कोई अनुभव नहीं रखते, इसलिए अच्छा यह होगा कि आप मुझसे दूर रहें, मुझे सलाहें न दें।"

सुदर्शन का समर्थन किया उसकी माँ ने। प्रभाकर इस बात पर बहुत दुखी हुआ कि बेटा उसकी कोई परवाह नहीं कर रहा है और उसके प्रति उसमें कोई आदर-भाव नहीं है। वह खेत बेचना नहीं चाहता था। और पाँच एकड खरीदने के लिए उसने रक़म जमा कर रखी थी। उसने वह रक़म बेटे को दी और कहा कि जैसा चाहो, करो।

सुदर्शन ने व्यापार शुरु किया। प्रारंभ में लाभ हुआ। इसे बनाये रखने के लिए वह अनीति के मार्ग पर चला, दूसरों को धोखा देता रहा, सब से झूठ बोलता रहा। परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी, जिसके कारण वह उनसे दूर नहीं हो पाया। उसने एक ही साल में पिता ने जो दिया, उससे तीन गुना ज्यादा कमाया।

बेटे की इस कामयाबी पर उसे बधाई देते हुए प्रभाकर ने कहा "तुम बड़े ही समर्थ हो। मैंने तुम्हें गलत समझा। तुम्हारे मूल्य को कम आँका। अगर तुम्हें मंजूर हो तो पूरी ज़मीन बेच दूँगा और तुम्हारे व्यापार में भागीदार बनूँगा।"

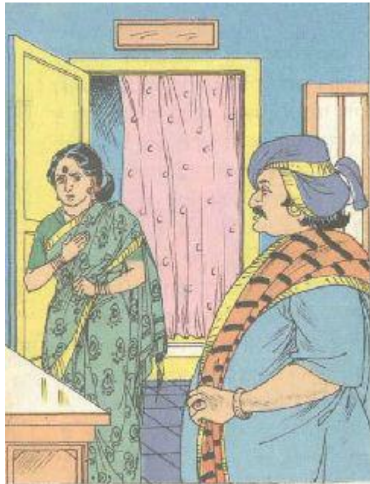
अपने पिता की इन बातों पर सुदर्शन बिल्कुल खुश नहीं हुआ। वह अपने पिता से चिढ़ भी गया। उसने पिता से कहा "गाँव के लोगों को उपदेश देते रहते हो, हित-बोध करते हो, किन्तु अब मैं समझ गया कि तुम्हारी दृष्टि में धन ही सब कुछ है। अनीति, छल-कपट, असत्य मनुष्य को धन दे सकते हैं, किन्तु संतृप्ति नहीं। यह मैं अपने अनुभव के आधार पर जान गया। नीति व सत्य-मार्ग पर चलकर एक और वर्ष तक व्यापार करूँगा। ऐसा करने के बाद भी अगर मैं लाभ कमाता जाऊँगा तो व्यापार को बरक़रार रखूँगा। नहीं तो व्यापार छोड़ दूँगा और खेती करूँगा। तब तक मैं किसी को अपने व्यापार में भागीदार बनाना नहीं चाहता।"

वर्ष पूरा होते-होते सुदर्शन के पास जो था, व्यापार में सब कुछ खो दिया। अब उसने निर्णय किया कि व्यापार छोड दूँ और खेती करूँ।

उसके निर्णय का आदर प्रभाकर करता पर सुदर्शन ने साफ़ कह दिया कि खेती अपनी पद्धति से करूँगा। उसने कहा कि जिस खेत में अनाज पकता है उसमें तंबाकू के पौधे रोपूँगा। आम के पेड़ काट डालूँगा और उनकी जगह पर नारियल के पौधे रोपूँगा। पिता ने उसे समझाया कि जो पेड़ हैं, उसे क्यों काटते हो, ज़मीन खरीदो और जैसा तुम चाहते हो, करो। सुदर्शन ने अपने पिता की इस सलाह को मानने से इनकार किया। उसने अपने बेटे को समझाने की बहुत कोशिश की, पर जब वह अपनी जिद पर अड़ा रहा तो उसने कहा "जब तक मैं जिन्दा रहूँगा, तब तक वही होगा, जो मैं चाहता हूँ। अगर तुम्हें अपने विचारों पर इतना ही भरोसा है तो नयी ज़मीन खरीदो और प्रयोग करो।

सुदर्शन तैयार बैठा था। उस गाँव में प्रकाश नामक एक संपन्न किसान था। सौ एकड की उसकी ज़मीन थी। पद्मा उसकी इकलौती पुत्री थी। सुदर्शन का रूप देखकर वह उसपर मुग्ध हुई। हठ किया कि शादी





करूँगी तो मैं उसी से करूँगी। प्रकाश, सुदर्शन को दस एकडों की ज़मीन देने तैयार हुआ और उससे कहा "जैसा चाहते हो, खेती करो। परंतु एक शर्त है, तुम्हें मेरी बेटी से विवाह करना होगा।"

रिश्ता अच्छा था, किन्तु उसमें एक अड़चन थी। प्रकाश और प्रभाकर कट्टर दुश्मन थे। वे एक-दूसरे से बोलते तक नहीं थे। इसलिए प्रकाश ने सुदर्शन से कहा "अगर तुम मेरी बेटी से शादी करोगे तो तुम्हें अपने माँ-बाप से दूर रहना होगा। तुम दोनों को अलग परिवार बसाना होगा।"

सुदर्शन ने प्रकाश की शर्तों के बारे में अपने माँ-बाप को बताया।

यह विषय जानकर सुदर्शन की माँ चिंताग्रस्त हो गयी। उसकी बड़ी इच्छा थी कि बहू ससुराल आये, पति की अच्छी तरह से देखभाल करे, घर संभाले और सब मिल-जुलकर आनंदपूर्वक जीवन बितायें। वह बेचारी लाचार थी। उसने गोपालस्वामी के घर जाकर अपना दुखड़ा सुनाया।

गोपालस्वामी कहता रहता था कि उसके पास महिमामयी एक जड़ी-बूटी है। उसका दावा था कि उसके प्रभाव से किसी के भी मन को वह बदल सकता है। परंतु दो दिनों तक उस आदमी को उसके पास आना होगा। दूसरी ही बार वह बूटी उस आदमी पर अपना प्रभाव दिखा पायेगी। सब कुछ सुनने के बाद गोपालस्वामी ने सुदर्शन की माँ से कहा "बडों ने कहा कि जैसी करनी, वैसी भरनी। तुमने जब अपनी बेटी की शादी की, याद है, तुमने उससे क्या कहा? तुमने अपनी बेटी से कहा कि अपना अलग परिवार बसाओ। अपने सास-ससुर को दूर रखो। तुम्हारी बेटी के सास-ससुर के द्वेष व घृणा ने ही तुम्हें इस स्थिति पर ला खडा कर दिया। तुम अपना स्वभाव बदलो और अपने बेटी को सही मार्ग पर ले आओ। तुम्हारी बेटी के सास-ससुर संतुष्ट हो जाएँ तो तुम्हारी भलाई होगी।"

"इस विषय पर चर्चा करने के लिए मैं यहाँ नहीं आयी। सुदर्शन में पितृभक्ति नाम मात्र भी नहीं रही। मैं यह कहने आयी हूँ कि आप उसमें पितृभक्ति उत्पन्न करें।" सुदर्शन की माँ बड़ी ही चालाकी से बात बदलती हुई बोली।

'ठीक है, जो मुझसे होगा, करूँगा, पर यह मत समझना कि जब तक अपनी बेटी के विषय में तुम्हारा रुख नहीं बदलेगा, तब तक

तुम्हारे बेटे के विषय में, कुछ ऐसा होगा, जैसा तुम चाहती हो।" गोपालस्वामी ने यों कहकर उसे सावधान किया।

सुदर्शन की माँ ने उसकी चेतावनी को कोई विशेष महत्व न देते हुए कहा "मेरे बेटे के मन में परिवर्तन लाना हो तो उसे दो दिन यहाँ आना होगा। है न? तुमने कहा कि दूसरे ही दिन वह जडी-बूटी अपना प्रभाव दिखा पायेगी। इसलिए पहले दिन मेरे बेटे के सामने उसके बाप को खूब गाली देना। तभी दूसरे दिन वह तुम्हारे पास आयेगा।" उसने उसे उपाय बताया।

"मैं कुछ भी करूँ, पर होगा वही, जैसे उसकी बुद्धि है। मैं अपना प्रयत्न करूँगा। अब तुम जा सकती हो" गोपालस्वामी ने कहा।

घर जाने के बाद सुदर्शन की माँ ने जो हुआ, सब कुछ पति से बताया और कहा "अब आप निश्चिंत रहिये। मन मुटाव सब आप ही आप दूर हो जाएँगे।"

"आज तक तुमने महसूस नहीं किया कि उसमें पितृभक्ति नहीं है। तुमने तो समझ रखा था कि वही मुझसे ज़्यादा अक़्लमंद है। जब तुम्हें मालूम हो गया कि वह अपनी हदें पार कर रहा है, तुमसे भी दूर होता जा रहा है तो कहीं जाकर तुम्हारी बुद्धि ठिकाने पर आयी।" प्रभाकर ने पत्नी को यों कोसा।

"समय ही बता सकता है कि कब क्या हो और क्या न हो। गोपालस्वामी के पास जाने की इच्छा आज ही मुझमें जगी। क्या आपने अब तक इसके बारे में कभी सोचा?" प्रभाकर की पत्नी ने वेदांत सुनाया।

पति-पत्नी ने आपस में बातें कीं और



फिर अपने बेटे को बुलाकर उससे कहा "बेटे, तुम्हारी माँग को हमने कभी अस्वीकार नहीं किया। शादी के बारे में भी हम नहीं चाहते कि तुम्हारे निर्णय को अस्वीकार करें। आज गोपालस्वामी के घर जाना। वे तुम्हारे मामा समान हैं। उनका आशीर्वाद लेना। फिर तुम जैसा चाहते हो, वैसा होगा।" बडे प्यार से उन दोनों ने कहा।

सुदर्शन ने माँ-बाप की बात मान ली। वह गोपालस्वामी के घर गया। उसने सुदर्शन से सारी बातें जानीं और कहा "तुम्हारी माँ ने अपनी बेटी के मन में दुर्बुद्धि के बीज बोये। ऐसी स्त्री अवश्य ही अपनी बहू को भी सुखी नहीं रखेगी। अतः अलग परिवार बसाने का तुम्हारा निर्णय सही है। अब रही, तुम्हारे बाप की बात। वह कैसा आदमी है, गाँववालों

में से किसी से भी पूछो, मालूम हो जायेगा। ऐसे पिता के पुत्र होते हुए भी तुम उत्तम मनुष्य हुए, यह केवल तुम्हारा बडप्पन है। तुम्हारे निर्णय से मैं बहुत खुश हुआ। वृद्धावस्था में तुम जैसे उत्तम व्यक्ति की सेवा पाने की योग्यता नहीं रखता तुम्हारा बाप। इसी कारण भगवान ने तुममें ऐसा निर्णय जगाया।'' यों उसने प्रभाकर की निंदा की।

सुदर्शन ने असहनशील हो कहा ''मेरा इससे क्या लेना-देना। आपसे आशीर्वाद पाने मेरे माता-पिता ने मुझे यहाँ भेजा।''

''तुम्हारा बाप यह भी नहीं जानता कि सुमुहूर्त क्या है और कब हैं। भाड़ में जाए उसका बड़प्पन। कल अच्छा मुहूर्त है। तभी तुम्हें मेरे आशीर्वाद मिलेंगे'' गोपालस्वामी ने कहा।

सुदर्शन वहाँ से सीधे घर गया। जो हुआ, सब अपने माँ-बाप को बताने के बाद कहा ''मेरा अपना व्यक्तित्व है। वही करूँगा, जो मैं चाहता हूँ, जैसा मैं सोचता हूँ। जो भी हो, मैं अपने माँ-बाप को बहुत चाहता हूँ। मेरी माँ के बारे में गोपालस्वामी ने अंटसंट कुछ बक दिया। मैं चुप रहा। किन्तु मेरे बाप पर कोई दोषारोपण करे, मैं कैसे चुप रह सकता हूँ? ऐसे व्यक्ति से कदापि मैं आशीर्वाद नहीं लूँगा। आगे से मुझसे यह कभी मत कहिये कि मैं उसके पास जाऊँ और उसका आशीर्वाद पाऊँ। मैं चाहता हूँ कि भविष्य में आप उससे बात ही न करें।'' आवेश-भरित होकर उसने अपना निर्णय सुना दिया। अब जाकर प्रभाकर जान गया कि उसके बेटे में पितृभक्ति-भाव कितना भरा पड़ा है। वह यह भी जान गया कि अपनी पितृभक्ति की अधिकता के कारण ही वह उसकी बातें सुनने तैयार नहीं था। वह यह जान नहीं पाया कि उसकी पितृभक्ति पर उसे प्रसन्न होना चाहिये या दुखी।

प्रभाकर को गोपालस्वामी की बातें याद आयीं। उसकी पत्नी ने अपना स्वभाव सुधारा। तब से उन दोनों ने सही व सच्चा मार्ग अपनाने का निश्चय किया। इसके कारण उनकी बेटी का परिवार भी शांत व सुखपूर्वक रहने लगा। अब उनकी बेटी के सास-ससुर को अपनी बहू से कोई शिकायत नहीं।

सुदर्शन की पितृभक्ति यथावत् बनी रही। अब वह पितृभक्ति पिता को संतोष व संतृप्ति दे रही है।





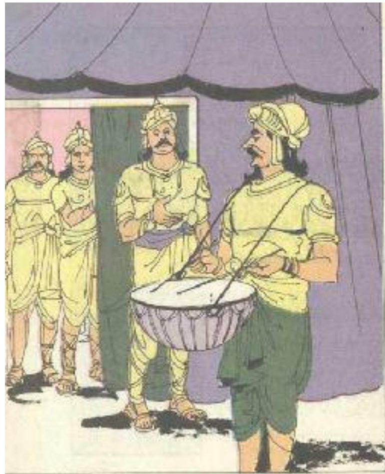
सम्राट अशोक

१४

(बिंदुसार के मरणोपरांत युवराज अशोक ने सुशेम आदि आंतरिक शत्रुओं को मरवा डाला। बड़ों की इच्छा के अनुसार द्वितीय विवाह किया। मगध का राजा बना। मंत्री व सेनाध्यक्ष के प्रोत्साहन से कलिंग पर चढ़ाई करने उद्यत हो गया। अशोक ने भरसक प्रयत्न किया कि विदीशा देवी उज्जयिनी नगर से राजधानी पाटलीपुत्र लायी जाएँ, पर वह इस प्रयत्न में असफल ही रहा। मगध की सेना कलिंग पर अकस्मात् हमला कर बैठी। कलिंग के शासक व प्रजा शत्रुसेना का डटकर मुकाबला करने सन्नद्ध हो गये।) - बाद

महाराज अशोक व यश दोनों सेनाधिपति के पडाव में आये। यश ने कहा ''हमने कलिंग पर अकस्मात् धावा बोल दिया। फिर भी कलिंग की प्रजा दृढ चित्त हो हमारा सामना कर रही है। उनका यह साहस व देशभक्ति अति प्रशंसनीय है। यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि इनका कोई राजा नहीं है, जो इनका मार्ग-दर्शन करे। फिर भी ये सब मिल-जुलकर लड़ रहे हैं। अपने प्राण न्योछावर करने सन्नद्ध हैं। इतिहास में कभी भी ऐसा हुआ नहीं होगा। यद्यपि सामान्य प्रजा युद्ध करना नहीं जानती, परंतु अपने देश के लिए मर-मिटने तैयार होकर आगे बढ़ रही है। हमें रोकने और अपने देश को शत्रुओं से बचाने के लिए सब कुछ करने तैयार है।''

''अब इस देश का कोई राजा भी नहीं रहा। सामंत व राज-प्रतिनिधि ही शासन-व्यवस्था को संभाल रहे हैं। उनकी एकता हमें



आश्चर्य में डुबो रही है'' अशोक ने भी कहा।

सेनाधिपति मौन ही रहा।

''आप पर दोष मढ़ने के उद्देश्य से मैं यह नहीं कह रहा हूँ। कलिंग की प्रजा का साहस प्रशंसा-योग्य है। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा है कि बिना राजा के प्रजा अपनी जान पर यों खेल भी सकती है'' यश ने कहा।

''मुझे भी अति आश्चर्य हो रहा है। वे ग्रामीण प्रांतों के सामान्य जन हैं। खेती करके जीनेवाले साधारण किसान हैं। परंतु इस देश की एक परंपरा है। जब कभी भी देश विपत्तियों से घिर जाता है; जब कभी भी शत्रुओं के आक्रमण के बादल देश पर मंडराने लगते हैं तब ऐसी परिस्थितियों में यहाँ की प्रजा एक होकर उनसे लड़ती है, अपने देश की रक्षा के लिए अपनी जान भी न्योछावर करने कटिबद्ध हो जाती है। उनकी यह एकता असमान है। उस स्थिति में वह कलिंग की सेना को पूरा सहयोग देती हैं। अपना सहयोग देकर उनके मनोबल को और बढ़ाती है'' सेनाधिपति ने कहा। ''मैंने भी सुना कि देश का हर आदमी अपने देश के लिए प्राण न्योछावर करने सन्नद्ध रहता है। वह किसी भी हालत में पीछे नहीं हटता। अपने कर्तव्य-पालन में वे असमान हैं। क्या यह सच है?'' अशोक ने पूछा।

सेनाधिपति ने कहा कि यह सौ फ़ी सदी सच है। ''इसका यह अर्थ हुआ कि बलशाली मगध की सेना का सामना साहसपूर्वक कर ही है, कलिंग की प्रजा और ख़ासकर वहाँ के किसान। मैंने ठीक ही कहा न? देखा, मेरे प्रथम आक्रमण मैं ही मेरी क्या स्थिति हो गयी। क्या परिणाम निकला? हाँ, हम पराजित तो नहीं हुए किन्तु मैं निराश अवश्य हुआ। मेरी आशाओं पर तुषारापात हुआ।'' दुख से भरे आग्रह के साथ अशोक ने कहा।

थोड़ी देरी तक वहाँ गंभीर चुप्पी छायी रहीं। यश ने हठात् तलवार निकाली और जोश-भरे स्वर में कहा ''महाराज, जब तक मुझमें साँस चलती रहेगी, तब तक ऐसा नहीं होगा।'' सेनाधिपति की ओर मुड़कर उसने कहा ''मगध के दलनायकों तथा सैनिकों को आज्ञा दीजिये कि जो भी सामने आये, बिना सोचे-विचारे मार डाल दिया जाए। यह कोई ज़रूरी नहीं है कि हम उनके आक्रमण की प्रतीक्षा करें। जब तक वे युद्ध करने संगठित नहीं होते, तब तक हम चुप नहीं बैठेंगे। जितने लोगों को हमारी सेना मार सकती हैं, मारने दीजिये। इससे उनका संख्या-बल घट जायेगा और तभी हम उनपर बिजय पा सकेंगे। हमारे सैनिक करुणा, दया आदि अपने मन से हटा दें। वे यह न सोचें कि निहत्थों पर हम तलवार चला रहे हैं। मानवता का भाव थोड़ा भी हमारे हृदय में जगा तो हम कहीं के न रहेंगे। कलिंग को जीतने की हमारी इच्छा, केवल इच्छा ही बनकर रह जायेगी। यह हमारी युद्ध नीति है और आप इस नीति को अमल में लाइये।''

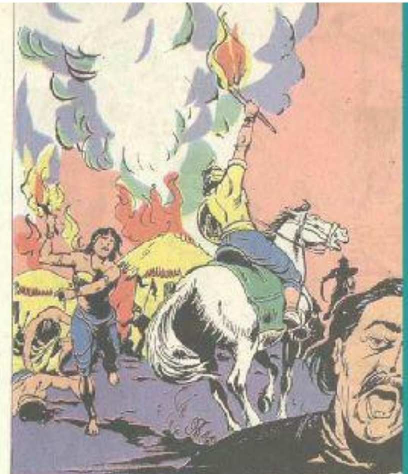
राजा के पड़ाव के सामने मुनादी की ध्वनि सुनायी दे रही थी। यह इस बात का संकेत है कि सैनिक राजा को कोई मुख्य विषय बताने वहाँ आये।

यश तीर की तरह बाहर आया और एक दलनायक के साथ अंदर आया।

''तोशाली के क़िले के परिसर प्रदेशों में घमासान युद्ध हो रहा है। हमारे पाँच हज़ार सैनिक मारे गये। इससे दो गुना अधिक कलिंग की सेना मारी गयी। परंतु एक आश्चर्यजनक बात यह है कि हमारी सेना का सामना करनेवाले लोग प्रशिक्षित सैनिक नहीं बल्कि साधारण नागरिक हैं, जिन्हें युद्ध करना नहीं आता। असली सेना तो क़िले के अंदर ही है।'' उस दलनायक ने कहा।

''असली सेना हम पर टूट पड़े, उसके पूर्व ही यथासाध्य हमें बलहीन करने का कलिंगों का युद्ध-व्यूह है। अब और विलंब करना अनुचित है। यह अनर्थदायक भी है। यश, हम ही मगध सेना का नेतृत्व संभालेंगे। आगे बढ़ो'' अशोक ने आज्ञा दी।

सभी पड़ाव से बाहर आये।



गुप्तचरों द्वारा मालूम हुआ कि युद्धभूमि के समीप के एक गाँव में हज़ारों कलिंग स्त्रीयाँ दिन के समय खाना पका रही हैं और सूर्यास्त होते ही सैनिकों को खाद्य-पदार्थ पहुँचा रही है। साथ ही साथ वे घायल सैनिकों की चिकित्सा भी कर रही हैं। सेनाधिपति फ़ौरन थोड़ी-सी सेना लेकर उस गाँव में गया, जहाँ ये काम हो रहे हैं। वहाँ पहुँचते ही मगध के सैनिकों ने पूरा का पूरा गाँव जला डाला।

वहाँ की स्त्रीयाँ बिल्कुल नहीं डरीं। वे जलती लकड़ियों को हाथों में लेकर सेना का सामना करने लगीं। उन्हें वे लगातार गालियाँ देती रहीं। वे कहती-चिल्लाती रहीं ''आख़िर हमने तेरा क्या बिगाड़ा? क्या हमारे देश ने मगध के साथ कभी कोई द्रोह किया? उस देश पर कभी आक्रमण किया? हमारे हरे-



भरे देश को लूटकर अपने देश को संपन्न बनाना चाहते हो ? किसी भी हालत में हम अपने देश को तुम्हारा होने नहीं देंगी । रक्त की नदियाँ बहें, हम सब मौत के घाट उतारे भी जाएँ फिर भी हम तुम्हारे गुलाम नहीं होंगी ।'' परंतु थोड़े ही समय में सैनिकों ने उन सबको बड़ी निर्दयता से मार डाला ।

दिन भर किले के समीप घमासान युद्ध होता रहा । दोनों पक्षों में हज़ारों मारे गये । दूसरे दिन यश ने अशोक के यहाँ जाकर नमस्कार करते हुए कहा ''एक शुभ समाचार महाराज । किले की एक तरफ़ की दीवार थोड़ी-सी टूट गयी । मैंने आज्ञा दी कि निपुण सैनिक चुपके से उस बिल से अंदर जाएँ और वहाँ के दलनायकों को मार डालें । दलनायक मार दिये जाएँ तो अवश्य ही क़िला हमारे अधीन हो जाएगा । हमारा आक्रमण सफल होगा ।''

''मित्र, तुमने बहुत ही अच्छा समाचार सुनाया'' अशोक ने यश को बधाई दी और बड़े ही उत्साह-भरे स्वर में कहा ''मैं बड़ी ही आतुरता के साथ उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब कि यह घोषित करूँगा कि यश कलिंग देश में मगध देश का राज-प्रतिनिधि नियुक्त किया गया है ।''

यश की भी आनंद की सीमा न रही ।

यश की आज्ञा के अनुसार मगध सेनाधिपति ने सेना सहित जाकर तोशाली क़िले के सामंत राज-प्रतिनिधियों के भवन को घेर लिया । वहाँ कुल इक्कीस राज-प्रतिनिधि थे । उनमें से कुछ वृद्ध थे । शत्रुओं का सामना करके उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये ।

इस घटना के उपरांत यश व अशोक किले के अंदर गये । अशोक को देखते ही रक्त-सिक्त एक वृद्ध ने कहा ''यह सच है कि तुमने हमें मरवा डाला । किन्तु हमारी आत्मा और हमारी देशभक्ति का अंत नहीं कर सकते । हमारा यह आवेश शाश्वत रूप से बना रहेगा । यह कभी ठंडा नहीं होगा । जब तक हम तुम सभी का सर्वनाश नहीं करेंगे, तब तक हमारी आत्माएँ शांत नहीं होंगी । जिस प्रकार तुम लोगों ने निर्दयतापूर्वक हमारी निरायुध स्त्रीयों को मार डाला, उसी प्रकार निरस्त्र तुम्हारी स्त्रीयों को मारकर ही हम सुख की साँस लेंगे ।'' दर्द-भरे स्वर में उस वृद्ध ने प्रतिज्ञा की ।

अशोक ने पूछा ''किसने निरायुध तुम्हारी स्त्रीयों को मारा?'' उस प्रश्न का समाधान

देने के पहले ही वह वृद्ध मर गया ।

यश ने कहा ''जगत्प्रसिद्ध तोशाली दुर्ग हमारे वश हो ही गया'' अशोक ने आश्चर्य पूर्वक पूछा ''दुर्ग तो हमारे वश हो गया किन्तु यहाँ कोई दिखायी नहीं देता ।''

''राज-प्रतिनिधियों में से कोई भी जीवित रहा तो हमारा किले में आना असाध्य हो जाता, अतः सबके सब मार दिये गये । किले की प्रजा में से कुछ मर गये तो कुछ लोग घायल हो गये । कुछ लोग क़ैद कर लिये गये । वे सब दयानदी के किनारे भेजे गये'' यश ने कहा ।

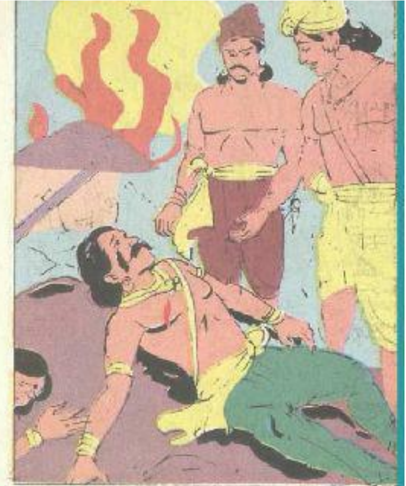
''इसका यह अर्थ हुआ कि हमने उस दुर्ग को वश कर लिया, जहाँ कोई मनुष्य नहीं है'' अशोक ने कहा ।

''हाँ, यहाँ मनुष्य तो नहीं रहे, किन्तु वे धन-राशियाँ व निधियाँ हैं, जिन्हें कलिंग के व्यापारियों ने दूर देशों में व्यापार करके कमाकर सुरक्षित रखा । अब कलिंग की नौकाएँ समुद्रों में चल-फिर नहीं सकतीं'' यश ने कहा ।

''कलिंग के व्यापारी व्यापार रोक भी दें तो हमें इससे क्या लाभ होगा । अगर वे चाहते हों तो वे हमारे देश के प्रतिनिधि बनकर यथावत् दूर देशों में व्यापार चालू रख सकते हैं । क्या वे ऐसा नहीं चाहेंगे?'' अशोक ने अपना संदेह व्यक्त किया ।

''वे शायद मान भी जाएँ, किन्तु आपके दास बनकर नहीं । स्वतंत्र राज्य के नागरिक होने पर ही वे यह काम करेंगे'' किसी की आवाज़ सुनायी पड़ी ।

अशोक ने उस ओर मुड़कर देखा । देखा



कि मृत्यु की शरण में जाता हुआ एक सामंत ये बातें कह रहा था ।

''तुम अभी भी जीवित हो?'' अशोक के पीछे ही चलते हुए एक दलनायक ने यह कहते हुए उस सामंत के शरीर में छुरी भोंक दी । वह सामंत वहीं तभी मर गया । अशोक ने नाराज़ हो पूछा ''क्यों तुमने अनावश्यक ही उसे मार डाला?''

''प्रभु, जब आप यहाँ हैं तब किसी भी प्रकार की असावधानी बरतनी नहीं चाहिये । उस सामंत की यह हिम्मत कि वह जो मुँह में आया, बक दे । हो सकता है, उसने कोई हथियार अपने पास छिपा भी रखा हो । वह शायद आप पर वह हथियार फेंके और आपको घायल करे ।'' दलनायक ने अपने समर्थन में यों कहा । सेनाधिपति ने भी दलनायक का



समर्थन किया। "फिर भी आप यह नियम अवश्य ही जानते होंगे कि महाराज की उपस्थिति में उनकी जानकारी के बिना जल्दबाजी में कोई भी काम करना नहीं चाहिये।" यश ने कहा।

"क्षमा कीजिये प्रभू। प्रभु के कल्याण को दृष्टि में रखते हुए मैं यह काम कर बैठा" दलनायक ने कहा।

अशोक ने यश से कहा "मुझे संदेह हो रहा है कि ऐसी भयंकर परिस्थितियाँ कहीं हमें क्रूर व दुष्ट न बना दें।" फिर सेनाधिपति की ओर मुड़कर उसने पूछा "क्या यह सच है कि निरायुध स्त्रीयों को हमारे सैनिकों ने मौत के घाट उतारा?"

"यह सच है कि वे निरायुध थीं। पर वे हमारी शत्रु सेना के लिए आहार-पदार्थ पहुँचा रही थीं और उनके घायल सैनिकों की सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं। कलिंग की सेना के आत्म-धैर्य को चोट पहुँचाने के उद्देश्य से उनका सर्वनाश आवश्यक हो गया।" सेनाधिपति ने कहा।

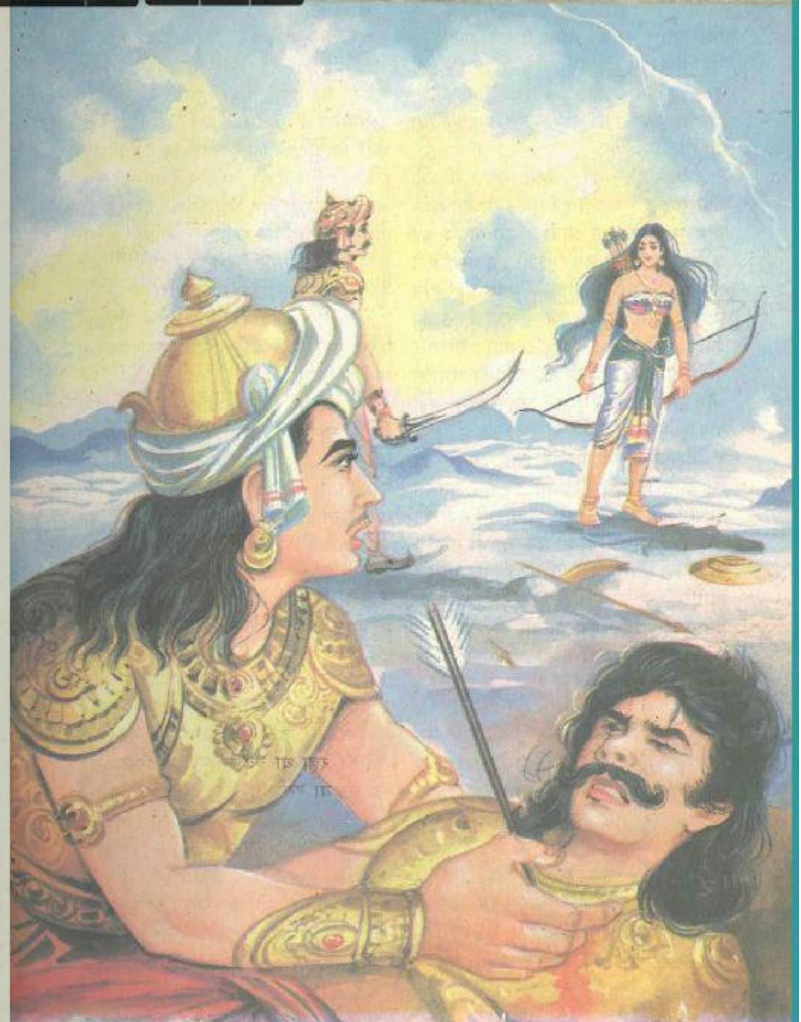
"वे स्त्रीयों कहाँ रहती थीं?" अशोक ने पूछा। "राज्य के कोने-कोने से आयीं। पास ही के गाँव में इकट्ठी हुईं।" सेनाधिपति ने कहा। अशोक ने कहा कि मुझे वहाँ ले जाओ। यश और सेनाधिपति अशोक के पीछे-पीछे गये।

किले के बाहर खड़े उपसेनाधिपति ने महाराज अशोक को नमस्कार करके कहा "महाराज, लाख से अधिक कलिंग की प्रजा मर गयी। उससे भी अधिक संख्या में बंदी हुए। लगता है, युद्ध समाप्त हो ही गया।"

अशोक ने मौन धारण किया और घोड़े पर चढ़ बैठा। यश व सेनाधिपति घोड़ों पर बैठकर उसके पीछे-पीछे गये।

अशोक नगर की सरहदों पर स्थित उस गाँव के पास आया। ग्राम के चारों ओर सियार, गिद्ध आदि शवों को नोच-नोचकर खा रहे थे। वहाँ के शोकमय दृश्यों ने, उससे भी अधिक फैली चुप्पी ने अशोक के हृदय-भार को और बढ़ा दिया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था वह अपनी इस विजय पर गर्व करे या दुखी हो।

"यश, कलिंग को जीत लिया। अब से तुम्हीं इस राज्य के शासक हो। मैं" अशोक अपनी बात पूरी करे, इसके पहले ही एक स्त्री की हँसी सुनायी पड़ी। दूसरे ही क्षण यश अपनी छाती पकड़ते हुए घोड़े से जमीन पर



गिर पड़ा। उसकी छाती में एक बाण घुस गया। अशोक, सेनाधिपति तुरंत घोड़ों से उतरे। सेनाधिपति ने अंगरक्षकों को आज्ञा दी कि बाण फेंकनेवाला तुरंत पकड़ लिया जाए।

"मुझे ढूँढ़ने की ज़रूरत नहीं। मैं यहीं उपस्थित हूँ" कहती हुई एक सुंदर स्त्री बाण हाथ में लिये वहाँ आयी। उस समय वह क्रोधित दुर्गा देवी लग रही थी। दलनायक ने उसे पकड़ लिया। अशोक भूमि पर पड़े अपने मित्र के पास गया। यश ने कुछ कहने की कोशिश की, पर कुछ कह न पाया। क्षण भर के लिए स्तब्ध अशोक ने अपने को संभाला और उस युवती से पूछा "तुमने इतना बड़ा पाप क्यों किया?"

"अपने पाप छिपाने के लिए मुझपर पाप का दोषारोपण कर रहे हो ? मैंने साबित किया कि कलिंग को कोई जीत नहीं सकता। तुम्हारी उपस्थिति में ही मैंने यह भी साबित किया कि तुम किसी और को हमारा शासक बना नहीं सकते। अधिकार-प्राप्ति के लिए हमारी इस भूमि पर जो भी क़दम रखेगा, उसका यही हाल होगा" उस युवती ने दृढ़ स्वर में बताया।

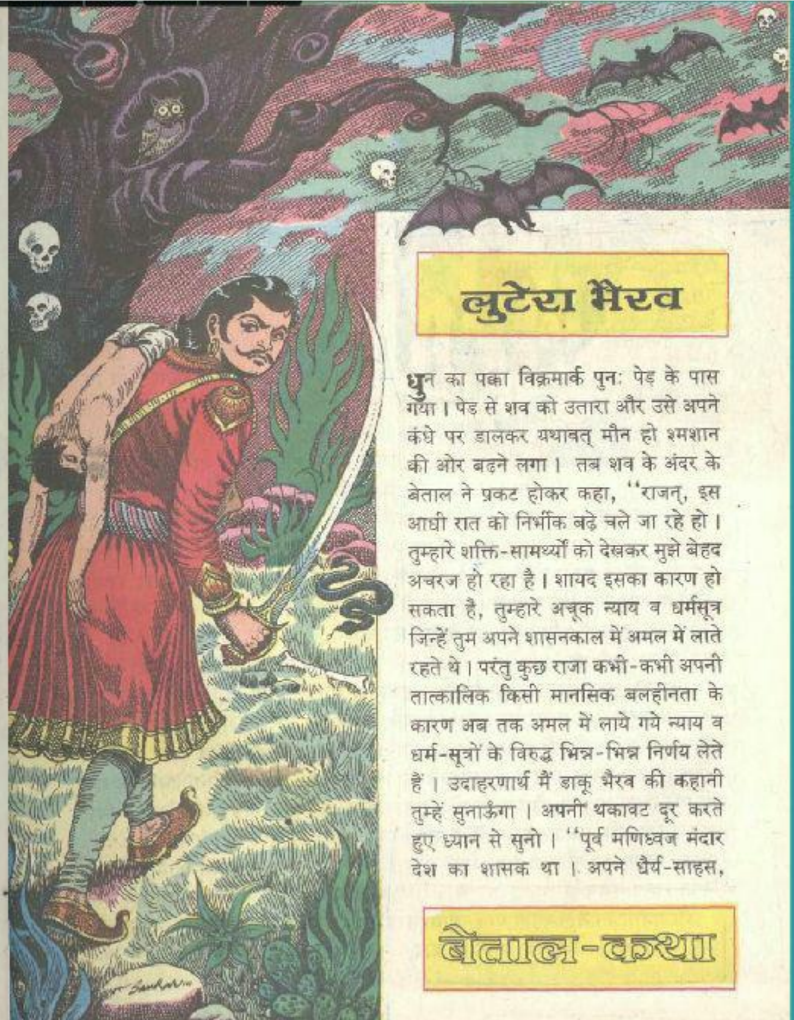
"प्रभु, यह स्त्री क्षमा-योग्य नहीं है। इस पापिन को मारने की अनुमति दीजिये।" दलनायक ने कहा। "नहीं, दलपति नहीं, ऐसा मत करो। अगर वह चाहती तो बहुत कुछ कर सकती थी। मुझपर बेधा गया बाण अगर महाराज पर बेधती तो हमारा यह आक्रमण निष्प्रयोजक होता; अर्थहीन होता; हमारी हार होती। उसे जीने दीजिये।" यश से कुछ और कहा नहीं जा सका।

सैनिक का लाया पानी यश को पिलाने का प्रयत्न किया अशोक ने। परंतु इतने में वह स्वर्गवासी हो गया।

लगता था, हवा रुक गयी। सब कुछ निस्तब्ध हो गया। मित्र की अंतिम बातों को याद करते हुए अशोक अपने मित्र के भौतिक देह के पास बैठ गया। वह सोचने लगा "मुझे यह युवती निशाना बनाती तो आक्रमण, यह भयंकर युद्ध, विजय सब निष्प्रयोजक हो जाते। मैंने विजय पायी, किन्तु इससे मुझे क्या मिला, क्या पाया।" वह तीव्र रूप से सोचने लग गया।

(समाप्ति अगले अंक में)

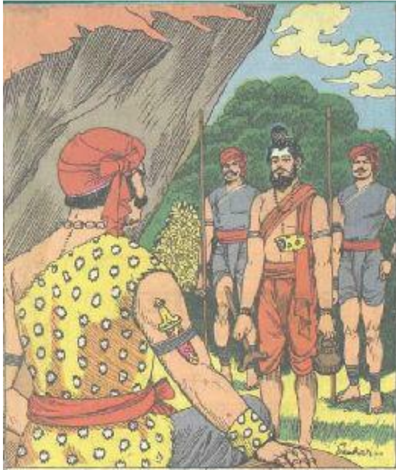




लुटेरा भैरव

धुन का पक्का विक्रमार्क पुनः पेड़ के पास गया। पेड़ से शव को उतारा और उसे अपने कंधे पर डालकर यथावत् मौन हो श्मशान की ओर बढ़ने लगा। तब शव के अंदर के बेताल ने प्रकट होकर कहा, "राजन्, इस आधी रात को निर्भीक बढ़े चले जा रहे हो। तुम्हारे शक्ति-सामर्थ्यों को देखकर मुझे बेहद अचरज हो रहा है। शायद इसका कारण हो सकता है, तुम्हारे अचूक न्याय व धर्मसूत्र जिन्हें तुम अपने शासनकाल में अमल में लाते रहते थे। परंतु कुछ राजा कभी-कभी अपनी तात्कालिक किसी मानसिक बलहीनता के कारण अब तक अमल में लाये गये न्याय व धर्म-सूत्रों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न निर्णय लेते हैं। उदाहरणार्थ मैं डाकू भैरव की कहानी तुम्हें सुनाऊँगा। अपनी थकावट दूर करते हुए ध्यान से सुनो। "पूर्व मणिध्वज मंदार देश का शासक था। अपने धैर्य-साहस,

बेताल-कथा



विवेक तथा न्यायपूर्ण शासन के लिए वह बहुत ही प्रख्यात था। उसके काल में दंड-संहिता बड़ी ही कठोर होती थी। पकड़े गये चोरों के हाथ काट दिये जाते थे। लुटेरे शूली पर चढ़ाये जाते थे। फिर भी देश में लुटेरों का उपद्रव जारी था।

मंदारदेश तथा पड़ोस के ही साबीर देश के मध्य बहुत बड़ा अरण्य था। उस अरण्य में रहनेवाले डाकुओं की वजह से प्रजा को बहुत ही कष्ट झेलने पड़ते थे। मणिध्वज के सैनिकों ने इन डाकुओं को पकड़ने की बहुत बार कोशिश की, पर वे सफल नहीं हो पाये। इसका कारण था-घने जंगल के बीचों बीच स्थित रहस्य-स्थल।

भैरव उसी जंगल में रहता था। वह बहुत बड़ा लुटेरा था। पिता के मरने के बाद, बचपन में ही वह कुछ लुटेरों का सरदार बना। वह मुसाफ़िरों को लूटता था। इस कला में वह माहिर था। उसे खबर लग जाए कि कोई धनिक अरण्य-मार्ग से जा रहा है तो साथियों सहित वह उसपर पिल पड़ता था और उसे लूट लेता था।

एक बार भैरव के अनुयायी एक मुनि को उसके पास ले आये। उनका संदेह था कि वह मुनि नहीं, बल्कि बहुरुपिये के वेष में छिपा राजा का गुप्तचर है। जब स्पष्ट मालूम हो गया कि वह कोई और नहीं, मुनि ही है तो भैरव ने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे मुनि को अरण्य की दूसरी ओर ले जाएँ और छोड़ दें।

किन्तु मुनि वहाँ से जाने तैयार नहीं था। उसने कहा ''बेटे, मैं जानबूझकर इस घने जंगल से गुज़र रहा था। मैं एक प्रत्येक योग-साधना में हूँ। उसके लिए एकाग्रता नितांत आवश्यक है। मैं जब ध्यान-मग्न रहता हूँ तब किसी को मुझसे बात करनी नहीं चाहिये।

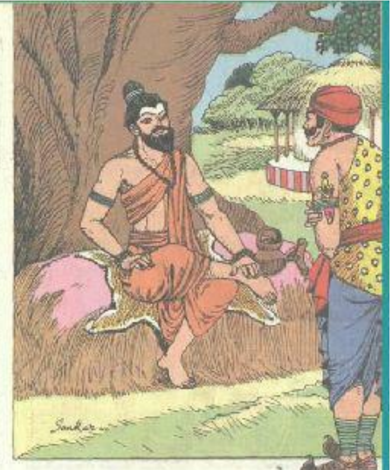
किन्तु इसके पहले जब कभी भी मैं योग-मुद्रा में बैठ जाता था, मुसाफ़िर मुझे देखने आ जाते थे और प्रश्न पूछ कर मेरा ध्यान भंग कर देते थे। मेरी एकाग्रता बिखर जाती थी। क्या तुम मेरे लिए कोई ऐसा प्रबंध कर सकते हो, जिससे कुछ समय तक इस रहस्य-स्थावर में ध्यान-मग्न होकर रह सकूँ।''

भैरव ने मुनि की इच्छा स्वीकार कर ली। मुनि के लिए आवश्यक प्रबंध किये और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करने लगा। इससे मुनि की तपस्या निर्विघ्न चलने लगी।

एक दिन साधु ने भैरव को बुलाकर कहा ''पुत्र, गर्मी का मौसम आ गया। मुझे अब हिमालय पर्वतों पर जाना है। मैं तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा से बहुत प्रसन्न हूँ। किन्तु मुझे दुख पहुँचाती है, तुम्हारी यह वृत्ति। क्या तुम नहीं जानते कि पराये लोगों की संपत्ति को लूटना पाप है? पेट भरने के लिए और कितने ही मार्ग हैं। बहुत ही हीन, निष्कृट इस जीवन-मार्ग को छोड़ दो।'' उसने यों हितबोध किया।

भैरव ने जवाब दिया ''स्वामी, मुझ जैसे आदमी को कैसे मालूम होगा कि पुण्य क्या है और पाप क्या है? हमारे दादा-परदादाओं से हमारा यही पेशा है। मैं नहीं जानता कि वे क्यों और कैसे लुटेरे हुए। मैं तो केवल तलवार से लड़ सकता हूँ। कोई और विद्या से मैं अपरिचित हूँ। क्या राजा मुझे अपना सैनिक बनायेंगे। नहीं। उन्हें तो पकड़े गये चोरों का सज़ा देना मात्र मालूम है। अपने को सुधारने के बारे में वे सोचते तक नहीं।''

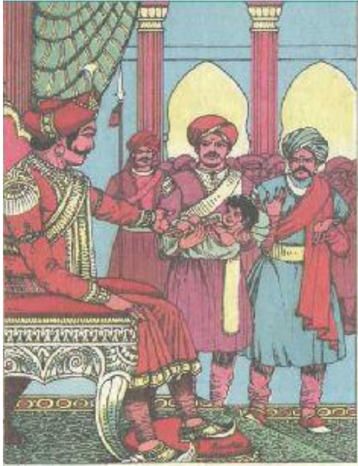
मुनि ने भैरव में सुधार लाने का तीव्र प्रयत्न किया। उस प्रयत्न में वह विफल ही रहा। उसने भैरव से कहा ''बेटे, जो मुझे सही लगा, मैंने तुम्हें बताया। अब तुम्हारी इच्छा। तुमने मेरी बड़ी सेवाएँ कीं, अतः मैं प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। तुम्हें एक मंत्र बताऊँगा, जिसे मैं जानता हूँ। उसका जप करते ही तुम शिशु बन जाओगे। अपना जीवन पुनः जन्म-काल से शुरु करोगे। परंतु हाँ, फिर से तुम भैरव नहीं बन सकोगे। यह बात अच्छी तरह से याद रखो और आवश्यकता पड़ने पर यह मंत्र जपो।'' यों कहकर मुनि



ने भैरव को मंत्र बताया।

एक बार सावीर देश को धन की सहायता की ज़रूरत पड़ी। मंदार देश के राजा मणिध्वज ने हट्टे-कट्टे व चुस्त सैनिकों को धन सौंपा और दलपति के नेतृत्व में उन्हें सावीर देश भेजा। किन्तु वह धन सावीर देश नहीं पहुँचा। पता नहीं चला कि दलपति व सैनिकों पर क्या गुज़रा। मणिध्वज को लगा कि यह काम अवश्य ही अरण्य के लुटेरों का ही काम है। बड़ी सेना लेकर मणिध्वज स्वयं निकला और रहस्य-स्थावरों को घेर लिया। भैरव भी पकड़ा गया। राजा ने जब उससे धन व सैनिकों के बारे में पूछा तो उसने कहा कि मैं इस बाबत कुछ नहीं जानता। पर उसने यह नहीं कहा कि मैं लुटेरा नहीं हूँ।

मणिध्वज ने उसकी बातों का विश्वास



किया या नहीं, यह प्रकट नहीं किया, पर उसे फाँसी की सज़ा सुनायी। क्योंकि वह अरण्य में पकड़ा गया, जो लुटेरों का निवास-स्थल है। एक सप्ताह के अंदर राजा की आज्ञा अमल में लायी जायेगी। वह जेल में डाला गया। भैरव अपनी दुस्थिति पर बहुत ही चिंतित होने लगा। उस समय उसे मुनि के बताये मंत्र की याद आयी।

सवेरे-सेवेरे जेल का अधिपति सैनिकों सहित आया और दरवाज़े खोले। सोये भैरव को जगाने के लिए जब दुपट्टा हटाया गया तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। उस दुपट्टे के नीचे एक शिशु पाया गया। दरवाज़े जैसे के तैसे बंद थे। किसी के अंदर आने की कोई गुँजाइश नहीं थी। बाहर जाने का कोई दूसरा मार्ग भी नहीं था। अधिपति ने शिशु को अपने हाथ में लिया और ग़ौर से देखा। उस शिशु के गाल पर एक दाग़ साफ़ दिखायी दे रहा था। उसे याद आया कि भैरव के गाल पर भी तलवार का गांट था। उस शिशु के चेहरे पर भैरव की एकरूपता थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भैरव शिशु के रूप में परिवर्तित हुआ। राजा की आज्ञा भैरव के गले में फाँसी का फंदा डालने की थी। उसकी जगह पर यहाँ तो शिशु है, इसका क्या किया जाए। अधिपति निर्णय नहीं कर पाया। वह पशोपेश में पड़ गया।

राजा मणिध्वज भरे दरबार में आसीन था। तब शिशु को लेकर जेल का अधिपति वहाँ पहुँचा। उसने जो हुआ, जो देखा, सब कुछ बताया। मणिध्वज ने सभासदों की राय पूछी।

तब सुप्रसिद्ध व्यापारी प्रमोदगुप्त ने कहा "महाराज, निस्संदेह ही यह शिशु लुटेरा भैरव ही है। क्या कोई अब तक मंदार देश के दुर्भेद्य कारागार से बचकर निकल पाया? भैरव मंत्र-तंत्रों के आधार पर दंड से मुक्त होने के प्रयत्न कर रहा है। जब उसे मुक्ति मिल जायेगी, अवश्य ही फिर से लुटेरा भैरव बनेगा। आपने जो दंड उसे दिया, बिना किसी हिचकिचाहट के अमल में लाइये। उसे शूली पर चढ़ाइये। आपने इस पर दया करके इसे छोड़ दिया तो भविष्य में अपराधी ऐसे ही मंत्र-तंत्रों के बल पर छूट जायेंगे। ऐसे ये अपराधी देश के लिए ख़तरा साबित होंगे। इस शिशु को छोड़ देने का मतलब है, हम अपनी दंड-संहिता को स्वयं लात मार रहे हैं, उसकी हँसी उड़ा रहे हैं। आप इस शिशु पर

थोड़ी सी भी दया न दिखाइयेगा। फाँसी की इसकी सज़ा अमल में लाइयेगा"।

मणिध्वज थोड़ी देर तक मौन हो सोचता रहा और फिर घोषित किया "इस शिशु को कोई दंड दिया नहीं जायेगा।" उसने यह भी घोषणा की कि यह शिशु अंत:पुर में पलेगा।

बेताल ने यह कहानी सुनाने के बाद राजा विक्रमार्क से कहा "राजन्, मणिध्वज के न्याय-निर्णय के बारे में मुझे अनेकों संदेह हैं। यह तो सर्वसम्मति से मान लिया गया कि वह शिशु कोई और नहीं, स्वयं भैरव ही है। रूप के परिवर्तन मात्र से क्या कोई लुटेरा दंड के योग्य नहीं? अलावा इसके, राजा ने इस शिशु को अपने अंत:पुर में शरण दी। इसका यही मतलब हुआ कि एक लुटेरे को राजसत्कार भी मिल गया। शिशु पर राजा के हृदय में जो करुणा जगी, क्या उससे राजा अपना कर्तव्य भी भूल गया? दंड-संहिता को भुला दिया? मेरे इन संदेहों के समाधान जानते हुए भी तुम चुप रह जाओगे तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे।"

विक्रमार्क ने कहा "मणिध्वज का न्याय-निर्णय सही है और नपा-तुला है। शिशु के रूप में जो भैरव है, वह निरपराधी है। भैरव ने कहा भी कि दलपति द्वारा भेजे गये धन को मैंने नहीं लूटा। उसके रहस्य-स्थावर पर वह धन पाया भी नहीं गया। राजा जान गया होगा कि भैरव झूठ नहीं बोल रहा है, अत: उस विषय में उसे दंड दिया जाना नहीं चाहिये। जैसे ही भैरव शिशु के रूप में परिवर्तित हुआ, वैसे ही उसने पाप-भरे जीवन को त्याग दिया और नये जीवन का शुभारंभ किया। मंत्र का उपदेश देनेवाले मुनि का भी यही उद्देश्य था कि भविष्य में वह सन्मार्ग पर चले। शिशु के रूप में परिवर्तित भैरव ने समझो, नया जन्म ही लिया। उसे बीते जीवन की यादें नहीं आतीं। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं कि मणिध्वज का सुनाया न्याय-निर्णय बिल्कुल न्याय-सम्मत है"

राजा का यों मौन-भंग होते ही बेताल शव सहित अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा।

आधार-भवानी प्रसाद की रचना





पिता की भेंट

चरुवा नामक गाँव में भरत नामक एक किसान रहता था। पाँच एकड़ की उसकी उपजाऊ ज़मीन थी। वह और उसका बेटा चंदन मन लगाकर खेती करते थे। बेटा पिता की मदद करता था। एक साल उड़द दाल की अच्छी फसल हुई। भरत ने दाल की देखभाल के लिए एक आदमी को रखा। वह चाहता था कि अच्छा दाम मिलने पर दाल को बेचूँ।

दो हफ़्तों के बाद हिसाब देखा तो मालूम हुआ कि दो बोरे कम पड़े। भरत ने रखवाले से पूछा तो उसने बताया कि रात भर में जागा रहा, पल भर भी मैंने आँखें बंद नहीं की। भरत ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया। अपने बेटे चंदन को स्वयं वहीं रहने का आदेश दिया।

उस रात को भी एक बोरे की कमी पड़ गयी। भरत से रहा नहीं गया। उसने गाँववालों से पूछा तो मालूम हुआ कि चंदन ही हर रोज़ उडद दाल का एक बोरा दूकान में बेच रहा है।

भरत को विश्वास नहीं हुआ। वह सोच भी नहीं सकता था कि उसका बेटा ही ऐसा काम करेगा। जब वह सोच में पड़ गया कि क्या किया जाए तब पड़ोस के गाँव से उसके रिश्तेदार का नौकर वीर उसके घर आया। वह अपने मालिक के काम पर यहाँ आया था।

भरत ने उसकी पूरी बातें सुनने के बाद उससे कहा "देखो, तुम्हारे मालिक का काम कोई ज़रूरी नहीं है। चार-पांच दिन यहाँ रह जाओ। हमें चोर को पकड़ना है, जो दाल की चोरी कर रहा है।"

उस रात को भरत ने वीर को खेत में रहने को कहा। वह जब सबेरे वहाँ आया तो देखा कि एक और बोरा गायब है। तभी जागे वीर से उसने कहा "क्या समझ रखा? यहाँ आकर देखा तो पाँवों के निशान देखने पर स्पष्ट है कि यह काम किसी एक ही चोर का है। किसी एक को अकेले ही उस वज़नदार बोरे को उठाना और ले जाना ना मुमकिन है। तुमने बोरा उठाने में उस चोर की अवश्य ही मदद की होगी"।

वीर ने सिर झुकाकर जमीन देखते हुए कहा "मालिक, मैं कुछ नहीं जानता। थक गया और सो गया। अभी-अभी जाग रहा हूँ।"

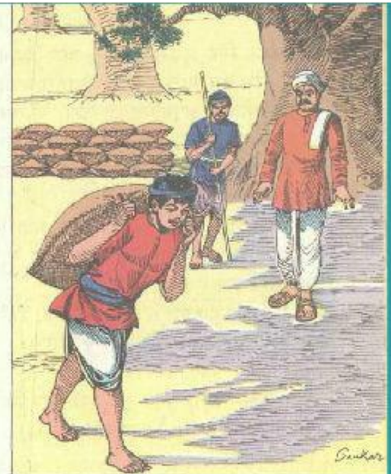
"खेत में एक ही आया है, यह पाँवों के निशानों से साफ़ मालूम हो रहा है। तुम्हारी मदद के बिना कोई अकेले ही बोरा उठाकर ले जा नहीं सकता। सच बोलो"। भरत ने वीर से कड़े स्वर में पूछा।

"आप क्यों एतबार नहीं करते कि मैं कुछ नहीं जानता।" वीर ने मुड़कर चंदन को देखा, जो बैलों को सानी पिला रहा था। फिर कहा "अपने बेटे से ही पूछ लीजिये कि बोरा कौन उठा ले गया"?

भरत ने कड़ुवे स्वर में अपने बेटे से पूछा "बोल, किसने बोरा उठाकर ले जाने में तुम्हारी मदद की? सच बोल"।

चंदन को मालूम हो गया कि भांडा फूट गया तो उसने शरमाते हुए कहा "किसी ने मेरी मदद नहीं की। मैंने खुद उठा लिया।"

उसके इस जवाब से भरत चकित हो गया। क्योंकि दो बलवान आदमियों के होने पर ही उड़द का भारी बोरा उठाया जा सकता है। उसे नीचे से अकेले ही उठाना संभव नहीं है। बोरे गये सो गये। अब वह यह जानने आतुर था कि उठाने में किसने उसके बेटे की मदद की।



"तुम्हारा कहना है कि अकेले ही तुम बोरा उठकर ले गये। ज़रा मेरी आँखों के सामने यह काम करके दिखाना।" भरत ने कहा।

चंदन ने उड़द का एक बोरा खड़ा किया। उसे अपनी पीठ से सटाया। अपने दोनों हाथों को कंधों से होते हुए पीछे ले गया और बोरे को कसकर पकड़ लिया। फिर एकदम उठ खड़ा हो गया। बोरा पीठ पर ढोते हुए वहीं दो-तीन चक्कर लगाये और पिता के सामने आकर खड़ा हो गया।

भरत आँखें फैलाकर अपने बेटे को देखता रहा। फिर कहा 'चंदन, जा बोरा दुकान में बेच ले।"

चंदन सिर झुकाकर इधर-उधर देखने लगा। इस बार भरत ने बड़े ही प्यार से अपने बेटे की पीठ को थपथपाते हुए कहा "मैं सच्च कह रहा हूँ। तुमने अपने असाधारण बल का प्रदर्शन किया। मेरी तरफ़ से यह छोटी भेंट स्वीकार करो "।

चंदन वहाँ से खुशी-शुशी चला गया। भरत ने वीर से कहा "अरे वीर, देखा न, अब यहाँ क्या हुआ ?"

मुस्कुराते हुए वीर ने कहा 'मालिक, यहाँ जो हुआ, यही नहीं बल्कि रात को जो हुआ, वह भी देख चुका"।

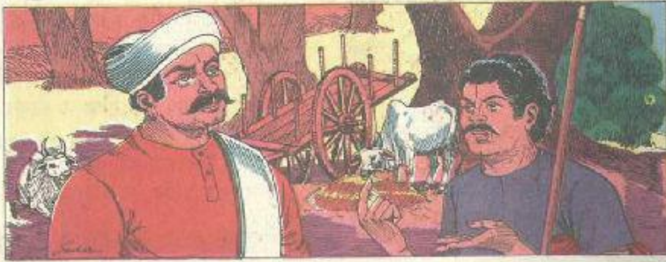
"अच्छा। तो तुमने झूठ क्यों कहा कि मैंने कुछ नहीं देखा, मैं कुछ नहीं जानता।" भरत ने पूछा।

वीर ने कहा "मालिक, आपके बेटे ने जो चोरी की, वह मुझे चोरी नहीं लगी। मैंने सुना कि आपका बेटा बहुत ही मेहनती है ? काम से कभी दूर नहीं भागता।"

भरत ने कहा "कौन कहता है कि वह मेहनती नहीं है। सवेरे-सवेरे जाग जाता था, झाड़ू देता था, बैलों को चारा खिलाता था, खेत जाकर हरी घास ले आता था, दिन में फिर से खेत जाकर वहां के काम-काज़ बहुत ही सुचारू रूप से करता था, काम पूरा होने के बाद घर लौटता था। काम करने से वह कभी भी पीछे हटता नहीं था। मुझे तो इस बात का दुख है कि ऐसे मेहनती युवक को क्यों यों चोरी करनी पड़ी। यह कैसे उसकी आदत बन गयी। इसी का मुझे खेद है"।

वीर ने कहा "इस छोटी-सी बात पर आप इतना दुखी क्यों होते हैं। ऐसा अच्छा लड़का कैसे चोर बन गया, आप खूब सोचियेगा। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं, उन्हें पैसों की ज़रूरत पड़ती है। उनके अपने खर्च होते हैं। बड़े उनकी आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं देंगे तो वे चोर बन जाते हैं। मैं नहीं कहता कि चोरी अपराध नहीं है। पर वे चोरी करने पर क्यों तुल गये, इसपर सोच-विचार करना बड़ों का फर्ज़ है। यह अच्छा हुआ कि उसने परायों का माल नहीं चुराया। अगर ऐसा करता तो आपका कितना अपमान होता।"

भरत को अब मालूम हुआ कि उसने क्या गलती की। उसके बाद चंदन को चोरी करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी।



कावेरी-यात्रा – I

प्रारंभ

वर्णन : जयंती महालिंगम्   चित्र : गोपकुमार

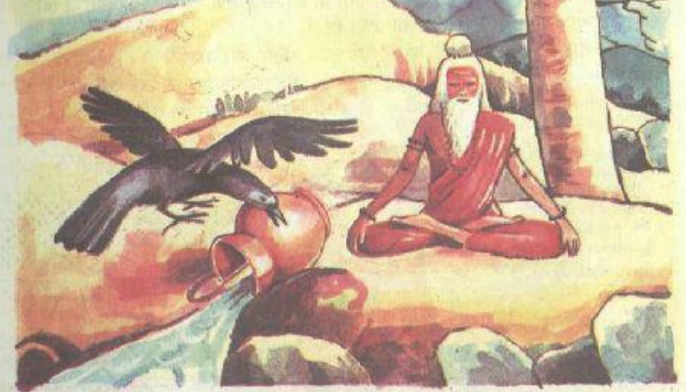


कावेरी भारत की उन सात पुण्यनदियों में से है, जिन्हें धार्मिक हिंदू प्रतिदिन स्नान के समय याद करते हैं. कावेरी के दूसरे भी कई नाम हैं – दक्षिणगंगा, पोन्नी (स्वर्णमयी), अखंडा, अन्नपूर्णा. वह 765 कि.मी. लंबी है और कर्नाटक तथा तमिलनाडु की प्राणधारा है. केरल का भी कुछ पानी उसमें आ कर मिलता है.

पुराणों में कावेरी

कावेरी के जन्म के संबंध में पुराणों में कई कथाएं हैं. स्कंदपुराण के अनुसार, कावेरी पहले शिवजी के निवास कैलास पर्वत पर बहती थी. शिवजी ने उसे आज्ञा दी कि महर्षि अगस्त्य के कमंडलु में रहा करो; जिससे वे जहां भी जाएं उन्हें पानी की कमी न रहे. बाद में महर्षि अगस्त्य विंध्य पर्वत को लांघ कर दक्षिण भारत चले आये. उस समय दक्षिण में भयंकर सूखा पड़ा हुआ था, क्योंकि एक असुर पानी-भरे बादलों को रोके हुए था. इंद्र के कहने पर गणेश ने कौए का रूप धारण करके अगस्त्य के कमंडलु को धक्का दे कर लुढ़का दिया, जिससे कावेरी का पानी बह निकला.

गणेश ने कौआ बन कर अगस्त्य का कमंडलु लुढ़का दिया.



कोडगु में कावेरी



कावेरी का उद्गम

कावेरी का उद्गम पश्चिम घाट में कर्नाटक के कोडगु (कुर्ग) जिले में तलकावेरी नामक स्थान पर है. यह ब्रह्मगिरि पहाड़ी के ठीक नीचे है. यहां हर साल अक्टूबर में, अक्सर 16 या 17 तारीख को, पानी का सोता जमीन से फूट निकलता है. इसके साथ *तुलासंगम* नाम का उत्सव शुरू हो जाता है, जो महीने भर चलता है. सोते का पानी *पुष्करिणी* नाम के एक पक्के तालाब में भर जाता है.

सोते को फूटते देखने के लिए हर साल भक्तों की भीड़ जुटती है और जब पानी निकलना शुरू होता है, तब लोग ऊंची आवाज में जयजयकार करते हैं और उसमें स्नान करने या बरतन में उसे भर कर घर ले जाने के लिए उमड़ पड़ते हैं. उसके बाद वे कावेरी के छोटे-से मंदिर में जा कर फूल और नैवेद्य चढ़ाते हैं.

यात्री अगस्तीश्वर के मंदिर भी जाते हैं, जो कि पहाड़ी पर चंद मीटर की ऊंचाई पर है. अगस्तीश्वर के दर्शन करके वे ब्रह्मगिरि की चोटी पर पहुंचते हैं, जो पुष्करिणी से 90 कि.मी. की ऊंचाई पर है.

तुलासंगम के उत्सव का कोडगु के मूल निवासी कोडव लोगों के जीवन में बड़ा महत्व है. प्रत्येक कोडव अपने जीवन में कम से कम एक बार अवश्य तुला मास में कावेरी में स्नान करना चाहता है. कोडव स्त्रियों में 'कावेरी' और कोडव पुरुषों में 'कावेरियप्पा' नाम बहुत आम हैं. कोई समय था जब धनी कोडव लोग सोने के सिक्के या जेवर पुष्करिणी में गिराया करते थे. इसे सागर-रूपी ससुराल को रवाना हो रही कावेरी को उसके मायकेवालों का उपहार समझा जाता था.

कोडव कोडगु की मुख्य जाति है. कोडव लोग सुंदर, बलिष्ठ और बहादुर होते हैं. अपनी रीतियों और जीवन-पद्धति पर उन्हें बड़ा अभिमान है. कोडव स्त्रियां एक खास ढंग से साड़ी पहनती हैं, जिसमें साड़ी की चुन्नटें पीठ की ओर होती हैं. उसके साथ एक कहानी जुड़ी हुई है. पार्वतीजी ने एक रात को कोडगु के राजा देवकंठ को दर्शन दिया और कहा कि अपने लोगों को वलंबूरि में एकत्र करो, मैं वहां प्रकट होऊंगी. जब लोग-बाग वहां इकट्ठे हुए तो पार्वतीजी एक नाले के रूप में पहाड़ पर से तेजी से नीचे उतरीं. नाले का बहाव इतना तेज था कि वहां खड़ी तमाम औरतों की साड़ियां ऊपर उठ गयीं. तब से कोडव स्त्रियों ने साड़ी बांधने का तरीका बदल लिया.

मानो कोडगु निवासियों की भक्ति से प्रसन्न हो कर कावेरी ने कोडगु को प्राकृतिक समृद्धि और सुंदरता की खान बना दिया है. यहां के जंगल बांस, सागवान और चंदन से भरे हुए हैं. जंगलों से बचे हुए स्थानों में काफी के बागान और धान के खेत हैं.

अंग्रेजों के शासन में कोडगु चीफ कमिश्नर का प्रांत था. मडिकेरी उसका मुख्यालय और प्रधान शहर था, जबकि पुराने कोडगु-नरेशों की राजधानी वीरराजपेट में थी. कोडगु में प्रायः सारे साल मौसम सुहावना रहता है. सिर्फ गरमियों में तापमान 30° से. से ऊपर जाता है. जिले में तीन स्थान ऐसे हैं, जहां पर सालाना 5,000 मि.मी. से ज्यादा बारिश होती है.

मडिकेरी में सबसे अधिक उल्लेखनीय स्थान है वहां का किला, जिसमें कोडगु राजाओं का महल भी है. दोनों का निर्माण हालेरि वंश के राजा मुद्दुराजा ने 1681 ई. में कराया था. अब महल को संग्रहालय बना दिया गया है. यहां कोडगुवासियों द्वारा काम में लाये जाने वाले तरह-तरह के सामान रखे हुए हैं और बहुत-से वीरकल्लु (यानी वीरों की स्मृति में स्थापित प्रस्तर-स्तंभ) भी हैं.

ब्रह्मगिरि की तलहटी में भागमंडल में कावेरी में उसकी पहली सहायक नदी कनका आ कर मिलती है. लोगों का विश्वास है कि *सुज्योति* नाम की एक अदृश्य नदी भी यहां कावेरी से मिलती है, जैसे प्रयाग में गंगा-यमुना से सरस्वती का संगम माना जाता है. इसलिए इसे भी 'त्रिवेणी संगम' कहा जाता है और प्रयाग जैसा ही पवित्र समझा जाता है. ऐसी भी मान्यता है कि प्रतिदिन लाखों मनुष्यों के स्नान करने से उनके पापों से कलुषित हुई गंगा शुद्ध होने के लिए सुज्योति के रूप में अदृश्य रूप से आ कर यहां कावेरी में स्नान करती है.

संगम के पास ही श्रीभगंडेश्वर का मंदिर है, जो एक प्रसिद्ध शिवालय है. सन 1790 में स्थानीय राजा दोड्ड वीरराजेन्द्र और टीपू सुलतान के बीच हुए युद्ध में टीपू ने मंदिर पर कब्जा कर लिया था. तब मंदिर की छत के तांबे के तीन खपरे नष्ट हो गये थे. दोड्ड वीरराजेन्द्र ने उनकी जगह चांदी के तीन खपरे लगवाये, जो आज भी देखे जा सकते हैं.

भागमंडल में एक शहद विपणन केंद्र है.



कोडगु स्त्रियों की साड़ी की चुन्नट पीछे क्यों होती है.

जिसका नाम 'मधुवन' है. यहां मधुमक्खीपालन भी होता है और एक मधुमक्खी संग्रहालय है. देश में इस तरह के संग्रहालय बिरले ही हैं. भागमंडल इलायची के लिए भी मशहूर है.

कोडगु और मैसूर जिलों की सीमा पर कुशालनगर है. कोडगु के राजाओं से लड़ाई के समय टीपू सुलतान जब यहां था, बेटा पैदा होने की खुशखबरी उसे मिली और उसने इसका नाम 'खुशहालनगर' रखा. 'खुशहाल' घिस कर 'कुशाल' बन गया. अंग्रेजों के समय यह 'फ्रेज़र पेट' कहलाता था. कुशालनगर के आगे कावेरी कोडगु और मैसूर जिलों के बीच सीमा बनाती है.

कावेरी के तट पर कोडगु-मैसूर मार्ग पर बसा हुआ पिरियापट्टण है. कभी यह बाघ के शिकारियों का प्रिय अड्डा था. कहा जाता है कि किसी जमाने में बाघ यहां के मंदिर और किले में घुस आते थे और तब कोडगु के नाम शिकारियों को उन्हें मारने के लिए बुलाया जाता था.



कॉफी के दाने तोड़ती कोडगु-बाला

पिरियापट्टण के नार्थ कुर्ग क्लब के पुराने संरक्षकों की तालिका में सर विंस्टन चर्चिल का नाम दर्ज है. कहते हैं, चर्चिल जब युवावस्था में भारतीय सेना में अफसर थे, वे यहां पर रहे भी थे.

कोडगु : कुछ झलकें

- अपने छोटे-से क्षेत्रफल और सीमित जनसंख्या के बावजूद भारतीय सेना को कोडगु की महत्वपूर्ण देन है. हमारी सेना के प्रथम भारतीय प्रधान सेनापति फील्ड मार्शल कार्यप्पा और स्थलसेना के प्रधान जनरल तिम्मय्या कोडव थे.
- कोडगु सालाना 4 लाख कि.ग्रा. शहद का उत्पादन करता है.
- अंग्रेजों का कब्जा होने से पहले कोडगु में पक्की तो क्या, कच्ची सड़कें भी नहीं थीं. कोडगु के राजा सड़कें नहीं बनने देते थे, ताकि आक्रमण करनेवाले शत्रु उनका उपयोग न कर सकें. पहली सड़क अंग्रेजों ने 1835 में बनायी. वह कुशालनगर को मडिकेरी से जोड़ती है.
- प्रसिद्ध नागरहोले राष्ट्रीय उद्यान कावेरी की सहायक नदी लक्ष्मणतीर्थ के तट पर है. उसका क्षेत्रफल 571 कि.मी., है.



फील्ड मार्शल कार्यप्पा



किफ़ायत-कोशिश

अनंत का जन्म एक छोटे गाँव में हुआ। अठारहवें वर्ष में उसने अपना विद्याभ्यास पूरा किया। तब उसका पिता मर गया। पिता की मृत्यु के बाद वह स्वयं खेती-बाड़ी का काम संभालने लगा। साथ ही ज़मींदार के दीवान में नौकरी पाने के प्रयत्नों में लगा रहा।

एक साल के बाद अनंत को दीवान में नौकरी मिली। जमींदार जगपति अपने कर्मचारियों की देखभाल खूब करता था। उनकी वैयक्तिक कठिनाइयों तथा आवश्यकताओं के बारे में स्वयं विवरण लेता था और यथासाध्य उनकी सहायता करता था। उन्हें अपनी संतान मानता था। नौकरी पर लग जाने के एक हफ़्ते के बाद अनंत अपना गाँव गया और माँ को अपने साथ शहर ले आने का प्रयत्न किया।

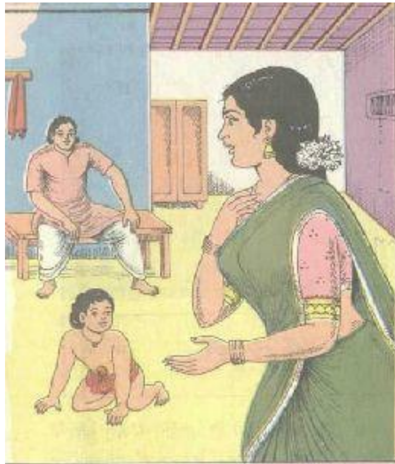
परंतु अनंत की माँ ने शहर आने से इनकार किया और अपने बेटे से कहा। ''मैंने और तुम्हारे पिता ने इसी घर में रहकर कष्ट झेलें, सुख का भी अनुभव किया। मरते दम तक मैं यहीं, इसी घर में रहूँगी। कहीं और जाने का सवाल ही नहीं उठता। जब-जब मुझे देखने की इच्छा होगी, आते-जाते रहना''।

अनंत ने अपनी माँ को बहुत समझाया, पर वह टस से मस न हुई। तब लाचार अनंत ने माँ से कहा ''तुम नहीं आओगी तो वहाँ कौन मेरी देखभाल करेगा ? मेरे खाने-पीने का कौन ख्याल रखेगा ?

मुस्कुराती हुई माँ ने बड़े ही प्यार से कहा ''तुम्हारे 'हाँ' कहने भर की देरी है'' लड़की तैयार बैठी है। शादी कर लो और साथ ले जाओ''।

वाणी, भरत की पुत्री है। बचपन से ही वह अनंत को जानती है। बहुत पहले ही यह तय हो चुका था कि वाणी का विवाह अनंत

राम भरोसे



से होगा। दोनों एक-दूसरे को चाहते भी हैं।

अनंत ने स्वीकृति दे दी तो एक सप्ताह के अंदर ही उनका विवाह संपन्न हुआ। वाणी, अनंत की धर्मपत्नी हो गयी। वह अपनी पत्नी को लेकर परिवार बसाने शहर चला गया। उसने एक छोटा-सा घर किराये पर लिया। उसमें एक कमरा और छोटा-सा रसोई घर मात्र थे। किन्तु, जो घर उनके रहने के लिए अब तक काफ़ी था, अब तीसरे प्राणी के आ जाने से कम पड़ गया। अब उनका एक पुत्र हुआ। तब से वाणी बड़ा घर लेने के लिए अनंत पर दबाव डालने लगी।

"हमारी आमदनी कम है। बड़ा घर लेंगे तो मुश्किल में पड़ जायेंगे। तुम तो जानती ही हो कि किराया ज़्यादा देना पड़ेगा।' अनंत ने वाणी को समझाने की कोशिश की।

वाणी ने तुरंत प्रस्ताव रखा "हम क्यों न अपना घर बना लें ?"

अनंत हक्का-बक्का रह गया। उसने कहा "क्यों ऐसी बेकार बातें कर रही हो। हम भला कैसे अपना घर बनवा सकते हैं ? सपने देखना छोड़ दो"।

फिर भी वाणी अपने प्रयत्नों में लगी ही रही। उसने किफ़ायत बरती और थोड़ी सी रक़म जमा कर ली। कुछ महीनों के बाद उसने अपने पति से यह बात बतायी।

अनंत हंस पड़ा और कहा "इस रक़म से तो दस गज़ की ज़मीन भी नहीं मिलेगी। इतनी रक़म हमारे पास थोड़े ही है कि हम इस बड़े शहर में अपना एक घर बनवा लें"।

वाणी अपनी जिद पर डटी रही। इतने में वे एक बच्ची के माँ-बाप हुए। वाणी ने फिर से अपना घर बनवाने पर ज़ोर दिया। लेकिन अनंत ने यह कहकर साफ़-साफ़ इनकार कर दिया कि यह हमारे बस की बात नहीं है।

ज़मींदार ने अपने यहां काम करनेवाले सब कर्मचारियों के लिए शहर के बाहर ज़मीन खरीदी और मुफ़्त ही उनमें बाँट दी। अनंत को भी वहाँ सौ गज़ की ज़मीन मिली।

वाणी ने पुनः अपने प्रस्ताव पर ज़ोर देते हुए कहा " अब ही सही, अपना एक घर बनवा लेना नितांत आवश्यक है। बच्चे जैसे-जैसे बढ़ते जायेंगे, उनकी आवश्यकतायें भी बढ़ती जाएँगी। उस स्थिति में घर बनवाना हमारे लिए बहुत ही कठिन हो जाएगा। मेरी बात मानो और घर बनवाने के प्रयत्नों में जी-जान से लग जाओ।"

अनंत ने फिर से उसके उत्साह पर ठंडा

पानी उंडेल दिया। उसने कहा "घर बनवाना कोई खेल नहीं है। लकड़ी खरीदनी होगी, ईंटें, चूना आदि बहुत चीजें खरीदनी होंगी। मज़दूरों ने भी अपना मेहनताना बहुत बढ़ा दिया। हम जैसे साधारण मनुष्य इस महंगाई के ज़माने में झोंपड़ी भी बनवाने की शक्ति नहीं रखते।"

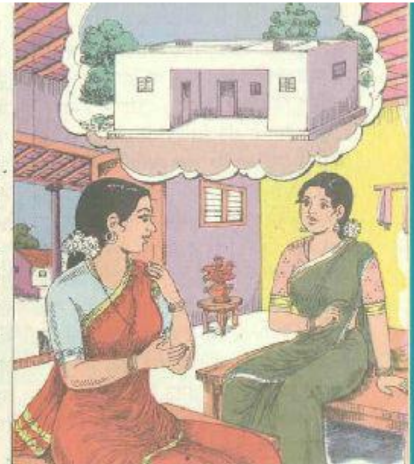
वाणी तिलमिला उठी। उसने क्रोध-भरे स्वर में कहा "तुम तो चुप बैठे रहते हो। इस दिशा में कोई प्रयत्न ही नहीं करते। पहले हमारे पास जो रक़म है, उससे दीवारें खड़ी करेंगे। फिर लकड़ी और छत के बारे में सोचेंगे। जैसे भी हो, अपना एक घर बनवा लेंगे। प्रयत्न तो करो। चुप बैठे रहने से कुछ नहीं होगा।"

अनंत बिना उत्तर दिये दीवान चला गया।

वाणी ने जो रक़म जमा की, गिना। मज़दूरों को बुलाकर उनसे बात की। ज़मींदार ने जो जगह दी, उसमें नीवें खुदवायीं। अनंत मना करता रहा, पर जब वह जान गया कि वह उसकी बात सुननेवाली नहीं है तो चुप रह गया।

देखते-देखते दीवारें भी खड़ी कर दी गयीं। वाणी ने इस बीच गाँव में रहनेवाले अपने भाई को ख़बर भिजवायी। उसके भाई ने अपने खेत में जो पेड़ थे, कटवाये और लकड़ी ले आया। यों बहन के प्रयत्नों में उसने जान फूंकी।

धीरे-धीरे दरवाज़े, खिड़कियाँ भी लगवाये गये। वाणी ने जो रक़म जमा की, पूरी की पूरी ख़तम हो गयी। अड़ोस-पड़ोसवालों से उसने कर्ज़ भी लिया। अब छत का काम



मात्र बाकी रह गया।

इस स्थिति में, एक दिन अनंत जब भोजन करके विश्राम का उपक्रम कर रहा था तब वाणी ने उससे कहा "तुम्हारा कोई दोस्त कर्ज़ देगा तो, क्यों नहीं ले लेते ? छत पूरी हो जाए तो समझ लो कि घर बन ही गया। अब हमें चाहिये बाँस और खपरैल। जब घर बना ही लिया तो ताल-पत्तों से ढकना क्या अच्छा लगेगा?"

अनंत खिसियाता हुआ बोला "क्या कभी मैंने किसी के सामने हाथ पसारे? घर न भी हो तो चलेगा, पर अपनी आन पर आँच नहीं आने दूंगा।"

इस घटना के दो दिनों के बाद गाँव से वाणी की एक सहेली उसके घर आयी। उसने विषय जाना और कहा "तुम्हें तो पहले ही

मुझे सूचित करना था। हमारे खेतों में ताड के मज़बूत पेड़ हैं। छत के लिए जो लकड़ी चाहिये, मैं फ़ौरन भेजूँगी। अधीर न होना।''

यों सहेली की भिजवायी लकड़ी से छत बनी। अब खपरैल मात्र चाहिये। शहर के खपैरैलों के एक कारखाने के बारे में पूछताछ करके उसने तत्संबंधी पूरी जानकारी पायी। उसे यह भी मालूम हुआ कि उस कारखाने का मालिक पैसे भरने पर किश्तों में खपरैल बेचता है। पर उसकी एक शर्त थी। कोई मध्यस्थ हामी दे, तभी वह खपरैल बेचेगा।

वाणी गंभीर सोच में पड़ गयी कि कौन है, जो हामी देगा। अनंत चुपचाप यह सब कुछ देखता ही रहा। सबेरे-सबेरे जब वाणी खिड़की के पास बैठकर अपने केशों में कंघी चला रही थी तब उसने देखा कि खपरैलों से भरी बैल-गाड़ियाँ उसी के घर की तरफ़ आ रही हैं तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। बैलगाड़ियों के साथ-साथ अनंत भी चला आ रहा था। वह दौड़ी- दौड़ी घर के बाहर आयी।

मुस्कुराते हुए अनंत ने वाणी को देखा और कहा ''इतनी क्यों चकित हो रही हो? ये पूरे खपरैल हमारे घर की छत के लिए ही ले आया हूँ। तुमने साबित किया कि प्रयत्न करें तो मनुष्य के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। अब ही सही, मैं हाथ पर हाथ धरे चुप बैठा रहूँ तो यह बहुत ही ज़्यादती होगी; तुम्हारे साथ अन्याय होगा। देरी से ही सही, अपना कर्तव्य जान गया।''

वह पति में बहुत समय से इसी प्रकार के परिवर्तन की प्रतीक्षा कर रही थी। अब परिवर्तित पति को देखकर उसके आनंद की सीमाएँ न रहीं। उसने कहा ''अपना घर बनाने में पहले से ही तुम्हारा सहयोग मुझे प्राप्त हुआ होता तो हम किराये के घर में रहने की दुस्थिति से बच जाते।''

''जो भी हो, तुमने ही किराये के घर में रहने की दुस्थिति से मुझे बचा लिया। अब मेरी समझ में आ गया कि पति की कमाई का दुरुपयोग न करके जो पत्नी किफ़ायत से ज़िन्दगी गुज़ारेगी, वह असाध्य कार्य भी साध्य कर सकती है।'' अनंत ने कहा।

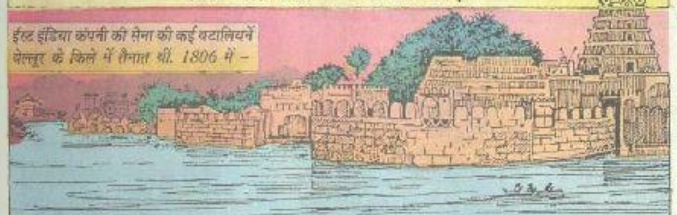
''हाँ, हम जिस स्थिति में हैं, उसमें इतना मात्र कर पाना असाध्य कार्य ही है।'' कहती हुई वह ज़ोर से हँस पड़ी।



वे अंग्रेज़ों से लड़े-भिड़े – 6

वेल्लूर का विद्रोह

वर्णन : मीरा उगरा ◆ चित्र : टी.जी.एस.











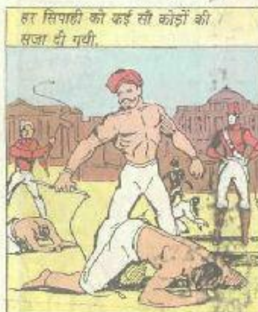












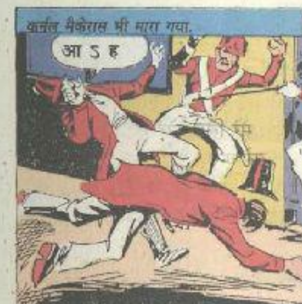














* सन 1799 में टीपू की हार और मौत के बाद की यह बात है. मुईजुद्दीन टीपू का बेटा था.











चार सौ विद्रोहियों की जानें गयीं. उससे भी ज्यादा विद्रोही घायल हुए. टीपू का बेटा मुईजुद्दीन, जिसकी जय के नारे विद्रोहियों ने लगाये थे, और उसके परिवार के दूसरे सदस्य मद्रास भेज दिये गये और बाद में वहां से कलकत्ता.



महाभारत

नहुष पहले बड़ा ही सज्जन था। किन्तु इंद्र-पद पाते ही विलासी हो गया। एक दिन जब वह अप्सराओं के साथ विहार कर रहा था तब उसने इंद्र की पत्नी शचीदेवी को देखा। उसपर वह मुग्ध हो गया। उसने उसे संदेश भेजा कि चूँकि अब मैं इंद्र हूँ, अतः वह उसकी पत्नी बनकर रहे। शचीदेवी उसके इस प्रस्ताव पर भयभीत हो गयी और महर्षि बृहस्पति की शरण में गयी।

यह विषय जानकर नहुष बृहस्पति पर अति क्रोधित हो उठा। वह ऋषियों और मुनियों को गालियाँ देने लगा। उन्होंने उसे हितबोध किया कि पराये पुरुष की पत्नी को चाहना महापाप है।

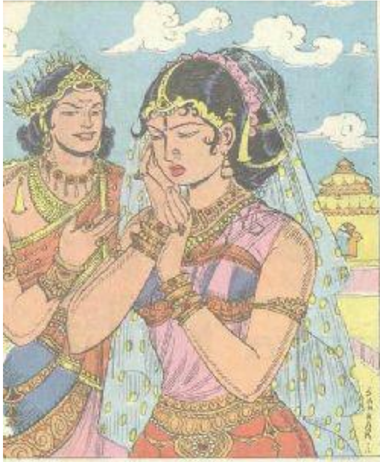
"इंद्र ने ऐसे ही कितने ही कार्य किये। क्या आपने उसे इसी प्रकार हितबोध किया?" नहुष ने उनसे प्रश्न किया।

तब सब देवता बृहस्पति के पास गये और कहा "महात्मा, नहुष बहुत ही नाराज है। शचीदेवी को उसकी पत्नी बनकर रहने के लिए मना नहीं पायेंगे तो अनर्थ हो जायेगा, सभी लोक विपत्तियों से घिर जायेंगे।"

"मैं किसी भी कष्ट को सहने के लिए सन्नद्ध हूँ, परंतु किसी भी स्थिति में नहुष की पत्नी नहीं बनूँगी" शचीदेवी ने कहा। बृहस्पति ने भी स्पष्ट कह दिया कि जो स्त्री मेरी शरण में आयी है, उसकी रक्षा करना मेरा धर्म है और इस धर्म को निभाकर ही रहूँगा।

तब इन संकटमय परिस्थितियों में एक ऐसा उपाय ढूँढ़ना पड़ा, जो शचीदेवी को भी नष्ट न पहुँचाए और नहुष का क्रोध भी ठंडा पड़ जाए।

"नहुष गर्वपूरित होकर पतन के गर्त में गिरने जा रहा है। इस स्थिति में अच्छा यही होगा कि शचीदेवी, नहुष के पास जाए और



थोड़ी-सी अवधि मांगे। अगर ऐसा हो तो समय ही इस समस्या का परिष्कार ढूँढ़ेगा'' बृहस्पति ने देवताओं से कहा।

बृहस्पति के अनुरोध पर शचीदेवी, नहुष के पास गयी और कहा ''मेरे पतिदेव इंद्र के बारे में अब तक कोई समाचार नहीं मिला। सही समाचार पाते ही मैं तुम्हारी पत्नी बनूँगी।'' इस बीच मुनियों ने इंद्र को ढूँढ़ निकाला और उसके पाप-क्षय के लिए उससे अश्वमेध यज्ञ करवाया। इंद्र स्वर्ग लौटा, पर नहुष के तेजस्व को देखकर भयभीत हो फिर कहीं भाग गया। शचीदेवी उसे ढूँढ़ती हुई गयी और उससे जब मिली तो उसने इंद्र से कहा ''नहुष को मारो और अपना इंद्रत्व पाओ।''

''नहुष को मारना अब संभव नहीं है, क्योंकि वह बलवान है। उसे उपाय से मारा जा सकता है और यह उपाय तुम्हारे हाथ में है। वह तुम्हें चाहता है, अतः तुम उससे कहो कि ऋषिगण उसे पालकी में बिठाकर तुम्हारे घर ले आयें। जब वह ऋषियों से यह कार्य करायेगा तब नहुष का पतन आप ही आप होने लगेगा।'' इंद्र ने शचीदेवी से कहा।

जब शचीदेवी ने नहुष से यह बात कही तो वह बहुत ही आनंदित हुआ। उसकी आज्ञा के अनुसार ऋषिगण उसे पालकी में बिठाकर ढोते हुए निकले। राह में मुनि और ऋषि किसी नैतिक विषय को लेकर उससे वाद-विवाद करने लगे। नहुष उनके इस व्यवहार पर क्रोधित हो उठा और क्रोध में आकर अगस्त्य के सिर पर लात मारी। अगस्त्य ने उसे सर्प बन जाने का शाप दिया। इससे नहुष स्वर्ग-भ्रष्ट हो गया। इंद्र पुनः अपना पद पाने में कृतकृत्य हुआ और शचीदेवी के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताने लगा।

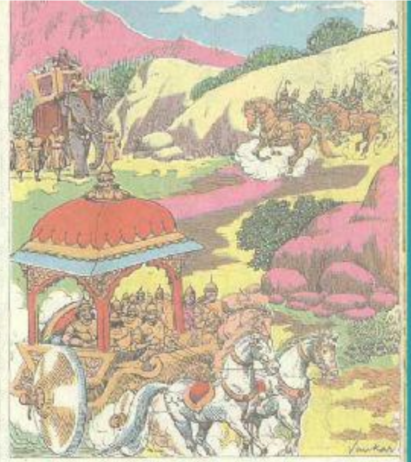
शल्य ने धर्मराज को यह कथा सुनायी और दुर्योधन से मिलने चला गया।

द्रुपद का पुरोहित पांडवों का दूत बनकर हस्तिनापुर पहुँचे, इसके पहले ही पांडव-कौरवों के पक्ष में युद्ध करनेवाले राजा और उनकी सेनाएँ उन-उनके शिबिरों में पहुँच गयीं।

पांडवों के पक्ष में युद्ध करने के लिए सात अक्षौहिणी सेनाएँ उपप्लाव्य में पहुँच गयीं। महारथी युयुधान अपने साथ एक अक्षौहिणी सेना ले आया। चेदि का राजा धृष्टकेतु भी इतनी ही संख्या में सेना ले आया। पांड्य देश का राजा पर्वत प्रदेशीय योद्धाओं के साथ

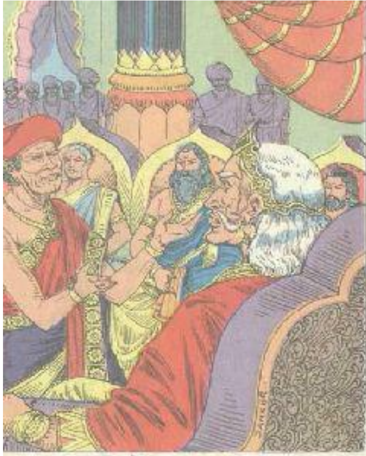
धर्मराज की सहायता करने आ गया। द्रुपद अनेकों देशों के योद्धाओं और महारथी अपने पुत्रों को साथ लेकर सेना सहित आ पहुँचा। मत्स्य देश का राजा विराट गिरिजन सैनिकों को अपने साथ ले आया। इनके अलावा कितने ही देशों के राजा अपने-अपने ध्वजों के साथ कौरवों से युद्ध करने आ पहुँचे। इसी समय पर, दुर्योधन के पक्ष में पांडवों से युद्ध करने के लिए ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ इकत्रित हुई। नरकासुर का पुत्र भगदत्त किरातों से भरी एक अक्षौहिणी सेना-सहित दुर्योधन के यहाँ आया। यह सेना अति बलशाली सेना थी। भूरिश्रवस, शल्य भी एक-एक अक्षौहिणी सेना साथ ले आये। पत्तों और फूलों को मिलाकर गूँथे गये पुष्पहारों को पहनकर हाथी जैसे दृढ़ योद्धाओं को लेकर कृतवर्मा आ पहुँचा। सिंधु, सावीर देशों से जयप्रद (सैंधव) आदि कितने ही राजा दुर्योधन के पास आये। दक्षिण के माहिष्मतीपुर से नील भयंकर आयुधों से लैस अद्भुत योद्धाओं को अपने साथ ले आया। अवंती देश का राजा अपने साथ दो अक्षौहिणी सेना लिये आया। इनके अलावा अन्य देशों से आये सैनिकों की संख्या कुल मिलाकर तीन अक्षौहिणी होगीं।

दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने अन्य देशों से आये राजाओं के रहने के लिए हस्तिनापुर में जगह नहीं रही। सेनाओं का क्या कहें? इतनी बड़ी सेना के रहने के लिए कौरवों ने प्रबंध किया -पंचनद, गुरुजागलं, रोहिता-कारण्य, मरुभूमि, अहिज्जत्र, कालकूट, गंगाकूट, वारण, नाटधानं, विस्तीर्ण यमुनातट, आदि प्रदेशों में। वहाँ उनके लिए डेरे खड़े किये गये।



इन विभिन्न प्रदेशों में आतिथ्य पाती हुई सेनाओं को देखता हुआ द्रुपद का पुरोहित हस्तिनापुर पहुँचा। वह धृतराष्ट्र के सभा-भवन में आया। विदुर, भीष्म, धृतराष्ट्र ने उस वृद्ध ब्राह्मण का स्वागत-सत्कार किया और पांडवों के कुशल-मंगल के बारे में पूछताछ की। उस ब्राह्मण ने भी दुर्योधन तथा इतर कौरव-पुत्रों के कुशल-मंगल के बारे में जाना और भरी सभा में सभी को संबोधित करते हुए यों कहा।

''सभासदो, धृतराष्ट्र और पांडु राजा एक ही दंपति की संतान हैं। दादाओं व पिताओं की संपत्ति में दोनों का समान भाग है। ऐसी स्थिति में धृतराष्ट्र के पुत्रों को ही पितृ-संपत्ति का भोग करने का क्यों अधिकार है और



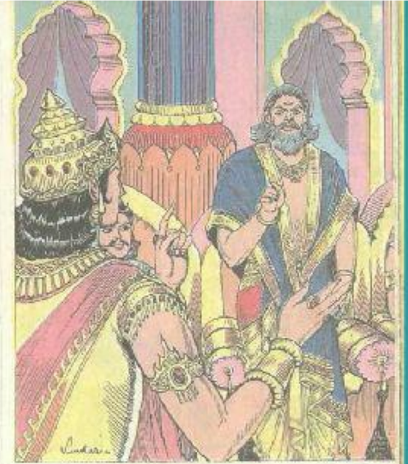
पांडवों को क्यों नहीं ? क्या वे इस अधिकार प्राप्ति के योग्य नहीं? क्या आपमें से कोई इसका कारण बता सकते हैं? आप भूले नहीं होंगे कि दुर्योधन ने पांडवों को कितना सताया। उनके अधिकार को उनके सुपुर्द न करके उन्हें कितने कष्ट पहुँचाये। पांडवों के पुण्यों ने ही उन्हें मरने से बचाया। नहीं तो वे कभी के मर चुके होते। यही नहीं, पांडवों ने अपनी शक्ति के आधार पर जो राज्य जीते, उन्हें भी धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हड़प लिया; मायावी जुए में हराकर उनसे छीन लिया। पाप भैरव शकुनि ने उनका साथ दिया। उनके अन्याय व अधर्म से भरे कृत्यों में आग में घी का सा काम किया। तेरह साल पांडवों ने अपनी पत्नी समेत वनवास बिताया। वर्णनातीत कष्ट झेले। विराट नगर में उन्होंने जो अज्ञातवास-काल बिताया, न ही वह कहने लायक है, न ही सुनने लायक। इतना सब कुछ होने के बाद भी पांडव, कौरवों से शांतिपूर्वक संबंध स्थापित करने की इच्छा रखते हैं। कौरवों से युद्ध करने की उनकी इच्छा नहीं है। युद्ध करने से असंख्य जन निरर्थक मारे जाएँगे। भीषण हत्याकांड होगा। वे चाहते हैं कि किसी को कोई नष्ट न पहुँचे, उनका राज्य उन्हें वापस दे दिया जाए। दुर्योधन को अपने बल पर अत्यंत विश्वास है। अलावा इसके, अनगिनत सैनिक यहाँ आये हुए हैं। इसलिए वह समझता होगा कि जीत उसी की होगी, विजय की वरमाला उसी के गले में पहनायी जायेगी। मेरी समझ में यह केवल उसका भ्रम मात्र है। दुर्योधन की सेना कितनी भी बलशाली व अधिकाधिक संख्या में क्यों न हो, पर इससे क्या लाभ। पांडवों की सेना में सात्यकी, भीम, नकुल, सहदेव एक-एक अक्षौहिणी के समान हैं। अकेला अर्जुन इतनी अक्षौहिणी सेनाओं के समान है। कृष्ण भी उत्तम कोटि के शूर-वीर हैं। इतने बल-संपन्न पांडवों से युद्ध करने के लिए आगे बढ़ना केवल मूर्खता ही साबित होगी। कोई भी बुद्धिमान युद्ध करना नहीं चाहेगा। पांडवों से दोस्ती का हाथ बढ़ाने का यह सुवर्ण अवसर है। ऐसा अवसर फिर कभी नहीं आयेगा। इस अवसर को जान-बूझकर हाथ से जाने मत दो।''

द्रुपद के पुरोहित के इस प्रकार कहने के बाद भीष्म ने कहा ''ब्राह्मणोत्तम, तुम्हारी बातों में कड़ुवापन है पर सच्चाई है। यह सही है कि पांडव युद्ध की तैयारी कर रहे हैं और साथ ही शांति भी चाहते हैं। यह बात झूठी व असंगत नहीं है कि पांडवों ने बहुत ही कष्ट झेले। उनकी सहनशक्ति अति प्रशंसनीय है। अर्जुन अनेकों अस्त्र-शस्त्रों के उपयोग में कुशल है। उसकी बराबरी का वीर कोई है नहीं। वह महायोद्धा है। वज्रायुधधारी इंद्र भी उसके सम्मुख टिक नहीं सकता। शेष पांडव भी महाशूर हैं।''

भीष्म का भीषण समाप्त होते ही कर्ण उठ खड़ा हुआ और कहने लगा ''विप्रवर, आपने जो भी कहा, सब जानते हैं। धर्मराज वचनबद्ध होकर भाइयों और पत्नी समेत अरण्य गया। इस विषय में कौरवों ने उनके साथ कोई अन्याय या अपराध नहीं किया। क्योंकि वे जुए में पराजित हुए और निर्णीत शर्तों के अनुसार उन्हें अरण्य जाना पड़ा। अब राज्य मांगना उनकी मूर्खता नहीं तो और क्या है? दुर्योधन पांडवों का बल देखकर डरनेवाला कायर नहीं है। उन्हें एक पग भर की भी भूमि कदापि नहीं देगा। अगर वे फिर से राज्य चाहते हों तो उन्हें एक और बार वनवास करना होगा। राज्य-प्राप्ति के लिए वे धर्म त्यज रहे हैं; युद्ध करने सन्नद्ध हो रहे हैं।''

भीष्म कर्ण की इन अर्थहीन बातों पर चिढ़ गया और कहा ''कर्ण, इन व्यर्थ बातों से क्या लाभ। अगर युद्ध होगा तो हम कीड़ों की तरह जलकर राख हो जाएँगे।''

तब धृतराष्ट्र ने हस्तक्षेप करते हुए कर्ण को टोका और यह कहकर उसे सावधान किया कि भीष्म की बातों में सच्चाई है और वे जो भी कह रहे हैं, हमारी भलाई के लिए



ही कह रहे हैं। फिर द्रुपद के पुरोहित से धृतराष्ट्र ने कहा ''महाशय, मैं इस विषय पर गंभीर रूप से सोचूँगा और अपना उत्तर संजय द्वारा पांडवों को भिजवाऊँगा। आप लौट सकते हैं।''

धृतराष्ट्र ने पुरोहित को सादर बिदा किया और संजय को बुलाकर कहा ''संजय, तुम शीघ्र ही उपप्लाव्य जाओ। धर्मराज से मिलो और उनका कुशल-मंगल जानो। वे सकुशल व सफलतापूर्वक वनवास व अज्ञातवास पूरा करके आये, इस बात पर उन्हें बधाई दो। फिर कृष्ण व युद्ध में उनकी सहायता करने आये सभी को सविनय प्रणाम करो। हमारे कारण पांडवों ने अनेकों कष्ट सहे। मुझे ऐसा कोई कारण स्मरण में नहीं आता, जिसके कारण उनकी वजह से हमें कष्ट सहने पड़े



हों। जब सोचता हूँ कि धर्मराज रूठकर हमसे युद्ध करनेवाला है, तो मैं भय से काँप उठता हूँ। भीम-अर्जुन महाशूर हैं। युद्ध-कला में उनकी बराबरी का कोई है नहीं। तुम्हीं उनसे जो कहना है, स्वयं निर्णय कर लो। बस, मैं इतना ही चाहता हूँ कि युद्ध न हो। उन्हें समझाना तुम्हारे जिम्मे है।"

संजय रथ में बैठकर उपप्लाव्य पहुँचा। धर्मराज से मिला। कुशल-मंगल की जानकारी के बाद संजय ने उन सबकी उपस्थिति में यों कहा।

"धृतराष्ट्र शांति चाहते हैं। यह संदेश आप तक पहुँचाने के लिए ही उन्होंने मुझे यहाँ भेजा। लोक उन्हें आदर्श पुरुष मानता है। अतः उनमें थोड़ी-सी बुराई दिखायी पड़े, वह सौ गुना अधिक ही लगती है। युद्ध में किसकी जीत होगी और किसकी हार, यह निर्णय नहीं किया जा सकता। किन्तु एक बात सत्य है कि युद्ध दोनों पक्षों के लिए हानिकारक है। पांडवों को मारकर राज्य-प्राप्ति की आकांक्षा भी समुचित नहीं। कौरवों को मारकर राज्याधिकार हस्तगत करने की इच्छा भी उचित नहीं। अपनों को मारने से अच्छा है मरण। देवता भी पांडवों को हरा नहीं सकते। कौरव-बल भी कुछ कम नहीं। मेरा विश्वास है कि इन दोनों बलों में युद्ध छिड़ जाए तो किसी एक का जीतना तथ्य है। किन्तु यह विजय निष्प्रयोजक है। इससे किसी को भी सुख प्राप्त होनेवाला नहीं है। मैं विश्वास करता हूँ कि पांडव जैसे कर्तव्यनिष्ठ धर्म के पथ से हटकर ऐसे हीन मार्ग पर नहीं चलेंगे। मैं हाथ जोड़कर आप सबसे प्रार्थना करता हूँ कि शांति स्थापित करने के लिए आप सभी कटिबद्ध हों।"

धर्मराज ने अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहा "संजय, क्या कभी मैंने यह बताया कि युद्ध अनिवार्य है। क्या कभी मैंने इस हिंसात्मक चर्चा को प्रोत्साहन दिया? मैं उन मूर्खों में से नहीं हूँ, जो शांति की स्थापना की आड़ में युद्ध करना चाहते हैं। जो बुद्धिमान है, जो शुद्ध चित्त का है, उसे जिस प्रकार अपने सुख के बारे में सोचना चाहिये, उसी प्रकार दूसरों के सुख का भी ध्यान रखना चाहिये। जो अरण्य में अग्नि प्रज्वलित करके यह कहे कि बाप रे, मैं विपत्ति में फंस गया, वह महामूर्ख है। दुष्ट दुर्योधन का समर्थन करते हुए धृतराष्ट्र भी कैसे सुखी रह सकते हैं? मायावी जुवा जिस दिन खेला गया, उसी

दिन से कौरवों का विनाश आरंभ हो गया। किन्तु कौरवों से सहजीवन बिताने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हमसे पहले जो छल-कपट किये गये, सभी भुला दूँगा। बस, इंद्रप्रस्थ मात्र मुझे दे। दुर्योधन ही राराजा बनकर रहे।"

संजय ने कहा "धर्मराज, तुमने कभी भी धर्म का पथ नहीं छोड़ा। तुच्छ राजभोग के लिए अपनी कीर्ति को शाश्वत रूप से कलंकित करोगे? युद्ध का विचार त्यजो। कौरव तुम्हें राज्य नहीं देंगे। युद्ध करके राज्य प्राप्त करने से उत्तम है याचन-वृत्ति।"

संजय के बताये धर्म-अधर्म के सूत्रों को धर्मराज ने नहीं माना। उसने संजय से स्पष्ट कहा "विपत्तियों से मुक्त होने के लिए अपनाया जानेवाला अधर्म भी धर्म ही माना जायेगा। श्रीकृष्ण जो कहेगा, वही मेरे लिए धर्म है।"

कृष्ण ने संजय से कहा "तुम शांति, शांति की रट लगा रहे हो। क्या तुम्हारा विचार है कि युद्ध करना राजाओं का धर्म नहीं? धृतराष्ट्र के पुत्र अधर्म करने पर तुले हुए हैं। पांडवों की संपत्ति को दुर्योधन ने अपना लिया, जो धर्म की नीतियों के विरुद्ध है। इसमें राजधर्म कहाँ रह गया? क्या रह गया? चोर में और दुर्योधन में भेद ही कहाँ रह गया? आज तक वह पांडवों की संपत्ति को भोगता रहा। अब वह उनकी संपत्ति क्यों नहीं लौटाता? दूसरों की संपत्ति पर उसका इतना मोह क्यों? क्या यह उसकी हीन प्रवृत्ति का सूचक नहीं? अपना राज्य पाने के लिए हम युद्ध करके मर भी जाएँ तो इस मौत में भी सुख है। जाओ और कौरवों से यह बात स्पष्ट कहो।"

संजय ने सबसे विनती की कि उससे कोई भूल हो गयी हो तो वे उसे क्षमा करें। सबसे बिदा लेकर जब वह निकलने ही वाला था, तब धर्मराज ने कहा "संजय, हम सचमुच शांति चाहते हैं। अगर धृतराष्ट्र भी सचमुच शांति की ही कामना करते हों तो उनसे कहना, राज्य का एक भाग ही सही, हमें दें। कहना कि हम पाँचों को पाँच गाँव मात्र दें। कुशस्थल, वृकस्थल, माकंदी, वारणावत और एक और गाँव, जो वे देना चाहते हैं, हमें दें। सब सुखी रह सकते हैं। मैं शांति के लिए जितना सन्नद्ध हूँ, उतना ही सन्नद्ध हूँ युद्ध के लिए भी।"

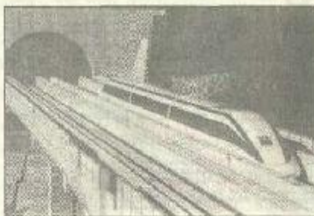
इस संदेश को लेकर संजय हस्तिनापुर निकला।



‘चन्दामामा’ की ख़बरें

तेज़ी में रिकार्ड

दिसंबर छे तारीख़ को जापान में बिना ड्रैवर के ही एक रेल-गाड़ी प्रति घंटा ५३१ कि.मी. की तेज़ी से दौड़ी और रिकार्ड स्थापित किया। पतली और चमकती-दमकती सुंदर दिखायी देनेवाली इस रेल-गाड़ी का नाम है-'मास्लेव'। यह रेल गाड़ी टोक्यो के समीप के यामिनाषी में १२.५ कि.मी. की दूरी



पर रेल की पटरियों पर चली। इशके पहले का रिकार्ड था- प्रति घंटा ५२७ कि. मीटर। किन्तु इसी 'मास्लेव' ने यामिनाषी में ही दिसंबर, २४ को ५५० कि.मी. की तेज़ी से चलकर नये रिकार्ड की सृष्टि की।

जेल में सुदीर्घ जीवन

साधारणतया घोर अपराध करने पर मृत्यु-दंड दिया जाता है या आजीवन कारावास की सज़ा। आजीवन कारावास नाम मात्र के लिए ही है। जिन्हें यह दंड मिलता है उन्हें जीवन-भर जेल में ही बंद पड़े रहने की जरूरत नहीं है। बहुत ही देशों में आजीवन कारावास-काल की अवधि होती है २१ साल। न्याय-वेत्ताओं का मानना है कि इस दंड-काल में ही अपराधियों में मानसिक परिवर्तन होगा और साथ ही समाज भी उन्हें माफ़ करके अपनायेगा। मोनस सिराल दक्षिण अफ्रीका का नागरिक है। उसने ३८ हत्याएँ की। स्त्रीयों पर ४० बार अत्याचार किये। छे चोरियाँ कीं। उसके ये अपराध न्यायालय में साबित हुए। पिछले दिसंबर में उसे न्यायाधिकारियों ने २,४१० सालों तक जेल की सज़ा सुनायी। तैंतीस वर्षों की उम्र के मोसन के अत्याचारों के शिकार हुए-बीस-तीस सालों की उम्र के लोग। अब हमें देखना होगा कि जेल की सजा उसमें सुधार लायेगी या नहीं, न्यायालय उसकी सज़ा कम करेगी अथवा नहीं।

टर्की की नींद का समय

हमारे देश की नूतन दशाब्दी के प्रथम वर्ष के प्रथम दिन आबादी की गणना शुरु होगी। सरकारी सर्मचारी इस अवसर पर घर-घर जाएँगे और विवरण इकट्ठा करेंगे। जब वे जाएँगे तब उस घर का मालिक घर पर न हो तो वे पुनः जाएँगे। इस प्रकार जानी जानेवाली आबादी की संख्या संबंधी विवरण उपलब्ध होते हैं। यह सारा विवरण सरकार को समर्पित करने में कम से कम एक साल लगेगा। टर्की ने निर्णय लिया कि यह काम एक ही दिन में पूरा हो। नवंबर ३० को बड़ी ही तेज़ी से आबादी की संख्या संबंधी विवरण इकट्ठे कर लिये गये। वह इतवार का दिन था। सरकार ने पहले ही घोषणा कर दी कि उस दिन कोई भी घर में हो, अस्पताल में हो, हास्टलों में हो, सबेरे पाँच बजे से चौदह घंटों तक किसी भी हालत में बाहर न निकले। सरकार के आदेश का अतिक्रमण किया जाए और कोई बाहर आये तो उसे छे महीनों की जेल की सजा होगी। जन-गणना के काम में लगे कर्मचारियों व पुलिसवालों के अलावा किसी भी व्यक्ति को सड़कों पर दिखायी देना नहीं चाहिये। अख़बारों ने लिखा कि टर्की यों एक पूरा दिन सोता रहा।

चन्दामामा परिशिष्ट ११२



हमारे देश की शोभाएँ

बंजारा वर्ग



औरंगजेब के आक्रमण के कारण बंजारे राजस्थान से शरणार्थी बनकर दक्कन प्रांत आये। बंजारा जाति का दो हजार सालों का इतिहास है। कहा जाता है कि यूरोप के महाद्वीपों से कुछ रोमनी जिप्सी अफगानी पर्वतों से होते हुए भारत आये और राजस्थान में बस गये। वे मुगलों के हथियारों व उनके शिविरों की सामग्री को ढोने का काम करते थे। पहले वे अंग्रेज़ों के गुप्तचरों का काम करते थे, पर उसने बाद इन्होंने टिप्पु सुल्तान को अपना सहयोग दिया।

बंजारों को किसी एक जगह पर न ठहकर घूमते रहना बहुत पसंद है। जीविका की खोज में वे एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते हैं। मिट्टी के बरतन, जस्ते की थालियाँ, टोकरियाँ, चटाइयाँ आदि इनकी संपत्तियाँ हैं। वे सब मिलकर अपनी ही जाति में से किसी एक को अपना नेता चुनते हैं।

हिन्दू धर्म के कुछ विश्वासों को ये भी मानते हैं। ये त्योहार मनाने में काफ़ी अभिरुचि दिखाते हैं। तिरुपति के बालाजी को अपना कुलदैव मानते हैं। बंजारा स्त्रीयों को सहज ही खेल-कूद बहुत ही पसंद हैं। ये रंग-बिरंगे वस्त्र पहनती हैं। सिर को ढकती हैं और पाँव तक कंघेला पहनती हैं। कपड़ों पर कशीदे का काम करती हैं। साड़ियों और चोलियों पर छोटे-छोटे शीशों के टुकड़े सिलवाती हैं। चूड़ियाँ, चाँदी, तांबा, दांत तथा सोने के गहने कुहनियों तक तथा शरीर पर पहनती हैं। पुरुष धोती व पगड़ी पहनते हैं। वे मामूली किसान जैसे लगते हैं।

मयूरध्वज

द्वापर युग के अंत में मणिपुर नामक राज्य पर शासन करता था, मयूरध्वज नामक एक राजा। वह धर्मात्मा था, प्रजा के दुखों को अपने दुख मानता था। उनकी सेवा करना, उनके कष्टों को दूर करना अपना धर्म व कर्तव्य मानता था।

मयूरध्वज ने यज्ञ करते हुए योगाश्व को विजय यात्रा पर भेज दिया। उस अश्व के साथ ताम्रध्वज के नाम से प्रख्यात उसका पुत्र सुचित्र भी गया।

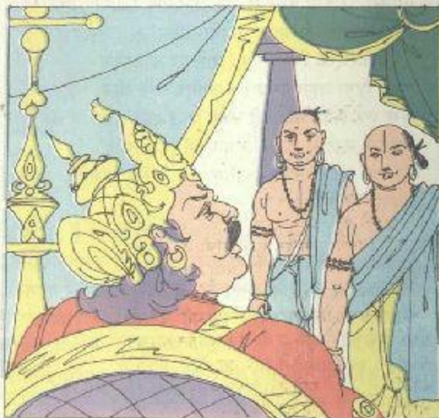
उसी समय पर धर्मराज ने भी यज्ञ करना चाहा। उसने भी अश्व को विजययात्रा पर भेजा। उस योगाश्व के साथ-साथ कृष्ण व अर्जुन भी निकले।

दोनों अश्व जब एक-दूसरे के सामने आये तब सुचित्र ने कृष्ण, अर्जुन को अपनी शक्ति से बेहोश कर दिया और आगे बढ़ गया। थोड़ी देर बाद जब कृष्ण व अर्जुन होश में आये, तब उन्हें विषय ज्ञात हुआ। वे यह जानने को उत्सुक हो उठे कि उस साहसी व शक्तिशाली राजकुमार का पिता कौन है, जिसका पुत्र इतना महान है।

दोनों ने ब्राह्मणों का वेष धारण किया और मणिपुर पहुँचे। मयूरध्वज ने उनका आदर-सत्कार किया औड़ पूछा कि किस काम पर उनका यहाँ आना हुआ।

"मार्ग-मध्य में एक सिंह ने मेरे पुत्र को जकड़ रखा है। मैंने उस सिंह से प्रार्थना की कि मुझे खा लो और मेरे पुत्र को छोड़ दो। तब उस सिंह ने कहा "मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा। तुम अपनी रक्षा करना चाहते हो तो जाओ और मयूरध्वज का आधा शरीर ले आओ। ऐसा करने पर तुम्हारे पुत्र को छोड़ दूँगा।" ब्राह्मण वेषधारी कृष्ण ने कहा।

इसपर मयूरध्वज की पत्नी ने कहा "आधे शरीर का अर्थ हुआ, पति के शरीर का आधा भाग। पति के शरीर का आधा भाग पत्नी होती है। अतः मुझे सिंह के आहार के रूप में स्वीकार कीजिये। राजा को छोड़ दीजिये।"



कृष्ण ने कहा "पत्नी पति का बायाँ भाग है। परंतु सिंह तो माँगता है राजा के शरीर का दायाँ भाग।"

"तो ठीक है, मेरे शरीर का दायाँ भाग काट लीजिये और ले जाइये" मयूरध्वज ने निस्संकोच कहा।

कृष्ण जब वह कार्य करने पर तुल गया तब राजा की बायीं आँख से पानी गिरने लगा। तब उसने कहा "रोते हुए दिया जानेवाला यह दान मुझे नहीं चाहिये। दान वही होता है, जो हृदयपूर्वक दिया जाता हो।

"महात्मा, मेरे शरीर का दायाँ भाग एक सत्कार्य के उपयोग में आ रहा है। बायीं आँख इस बात पर बिलख रही है कि वह इस भाग्य से क्यों वंचित रखी गयी। अलावा इसके इस पानी का कोई अन्य अर्थ नहीं"। राजा ने कहा।

दूसरे ही क्षण कृष्ण निजी रूप में प्रत्यक्ष हुआ और मयूरध्वज को अपने आलिंगन में बांध लिया। उसकी धर्मनीति व दानगुण की भरपूर प्रशंसा की। उसके यज्ञ की पूर्ति तक वह वहीं रहा। फिर उसे अपने साथ धर्मराज के यज्ञ-स्थल पर ले गया।

यूनिकार्न



यूनिकार्न कल्पित एक पुरातन जंतु है। विश्वास किया जाता था कि बहुत समय पहले ऐसा जंतु सचमुच ही रहा करता था। ब्रिटिश राजवंश के चिह्नों में एक तरफ सिंह तो दूसरी तरफ यूनिकार्न जड़े होते थे। माथे पर ऊंट के सींग वाले विचित्र घोड़े के आकार में यह दिखायी देता है। कहा जाता है कि ऐलिजबेत रानी के पास यूनिकार्न का सींग था और वह बहुत ही मूल्यवान था। कहते भी थे कि उसमें मनुष्यों को विष से बचाने की अदभुत शक्तियाँ मौजूद थीं। पुराणों के अनुसार सिंह और यूनिकार्न दोनों एक दूसरे के कट्टर शत्रु हैं। अगर दोनों का आमना-सामना हुआ तो एक-दूसरे को चीर डालेंगे और नोच डालेंगे। इसी कारण ढालों पर भी वे अलग-अलग जड़े गये हैं। ब्रिटिश राजवंश के चिह्नों में उसका अपना स्थान है।

काँच का गवाक्ष



काँचों के कलाकार काँच, रांगा व रंगों का उपयोग करके गाढ़े काँच का गवाक्ष बनाते हैं। वे पहले गवाक्ष का रेखा-चित्र खींच लेते हैं। इसे वे 'कार्टून' कहते हैं। वे रांगे की रेखाओं व काँचों के रंगों को सूचित करते हैं। मध्ययुग में इस सुंदर काँचों को कलाकार अपने कारखानों में ही बनाते थे। परंतु अब वे मनपसंद रंगों में मिलते हैं। 'कार्टून' पूरा हो जाने पर काँच को आवश्यक साइज में काटते हैं। फिर उसे रंगों की लकीरों पर रखकर अलग करते हैं और चिपका देते हैं। काँच का फ्रेम तैयार हो जाने के बाद उसपर रांगे से छोटे-छोटे डिज़ीन्स तैयार करते हैं। मध्ययुग में लोग अधिकतर अशिक्षित थे, इसलिए काँच के ये गवाक्ष गिरिजाघरों के समावेशों में चित्रों भरी पुस्तकों के रूप में उपयोग में लाये जाते थे।

दूरदृष्टि

हेलापुरी में नागेश्वर नामक सामान्य परिवार का एक आदमी था। वह अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ जिन्दगी काट रहा था। उसकी एक बहन थी, जिसकी शादी सुगंधपुरी के निवासी वर्धन से की और ससुराल भेज दिया। वर्धन भी सामान्य परिवार का ही था।

थोड़े समय के बाद वर्धन दिल की बीमारी का शिकार हो गया। इस स्थिति में नागेश्वर की पत्नी सावित्री ने अपने पति को मनाया और वर्धन को पत्नी समेत अपने यहाँ बुला लिया। अच्छे वैद्य को दिखलाया और उसकी चिकित्सा करवायी। रोगी की परिचर्या करने में कोई कसर नहीं रखी। देखते-देखते तीन ही महीनों में वर्धन चंगा हो गया।

वर्धन और उसकी पत्नी ने नागेश्वर व उसकी पत्नी को अपनी कृतज्ञता जतायी और अपना गाँव लौट गये।

एक दिन नागेश्वर ने अपनी पत्नी सावित्री से कहा "अपनी ननद व उसके पति पर इतनी दया व आदर-भाव दिखानेवाली किसी औरत को आज तक मैंने नहीं देखा। तुमने वर्धन की इतनी सेवाएँ की मानो अपने ही भाई की कर रहे हो। तुमने मुझसे झगड़ा मोल लिया और अपना घर बुलाकर उसकी चिकित्सा करवायी। तुम्हारे इस दयागुण को देखकर मुझे बड़ा आनंद हो रहा है।"

उसकी इन बातों पर वह ठठाकर हँस पड़ी और कहा "आपने मुझमें केवल दयागुण देखा। आपने यह नहीं देखा कि मैं कितनी व्यवहार कुशल हूँ और कितनी दूरदृष्टि रखती हूँ।"

नागेश्वर की समझ में नहीं आया कि वह क्या कह रही है।

"देखिये, आपकी भाभी भी यही चाहेगी कि ननद सुहागिन बनी रहे। सामान्य परिवार की लड़की अपने पति को खो दे, तो उसे मायका आकर ही तो रहना होगा। इसके अलावा दूसरा कोई चारा भी नहीं। आपके बहनोई को कुछ हो जाए तो आपकी बहन बच्चों सहित यहीं आकर रहेगी। तब उनकी देखभाल करने से हम बच नहीं सकते। इस वास्तविकता को दृष्टि में रखकर ही मैंने आपके बहनोई को यहाँ बुलवाया और उसकी चिकित्सा करवायी। यही मेरी दूरदृष्टि है।"

- रामानंद शर्मा



स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती के अवसर पर 'चन्दामामा' की भेंट

पहला स्वतंत्रता - संग्राम



(कानपूर-विद्रोह के बाद नाना साहेब मराठा राजा घोषित हुए। इससे ब्रिटिश कंपनी की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। जनरल हेपलाक के नेतृत्व में हजारों ब्रिटिश सैनिकों ने कानपूर पर धावा बोल दिया। कुछ समय तक नाना साहेब ने उनसे वीरोचित लड़ाई लड़ी। जब पराजय को टालना असंभव लगा तब वे युद्ध-क्षेत्र से हट गये। जो पकड़े गये, उनपर हेपलाक ने दारुण रूप से हिंसा की और अंततः उन्हें मार डाला। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध देश भर में विरोध तीव्र हुआ।)

-बाद

माहो के एक ब्रिटिश शिविर में आनंदोत्सव मनाये गये। विविध प्रांतों में लगातार ब्रिटिश सैनिक पराजित होते रहे। १८५८ के प्रारंभ में उनमें नूतन उत्साह उत्पन्न हुआ।

उस शिविर के सरदार के स्थान पर सर हाग रोज नामक एक अनुभवी सेनाधिपति नियुक्त हुआ। भारत के वर्तमान इतिहास तथा तत्कालीन परिस्थितियों से वह अच्छी तरह परिचित था। एक विशाल मंडप में इधर-उधर टहलते हुए उसने अपने कुछ भारतीय सिपाहियों से कहा "क्या आप समझते हैं कि झान्सी लक्ष्मीबाई स्वयं सेना का नेतृत्व संभालेंगी ? आज तक मैंने ऐसी रानी के बारे में नहीं सुना, जो ऐसे साहसपूर्ण काम करने पर सन्नद्ध हो जाए ? मानता हूँ, उसकी जगह पर कोई राजा-महाराजा होता तो युद्ध करने सन्नद्ध हो जाता। किन्तु एक अबला नारी ऐसा साहस-पूर्ण कार्य करने पर



तुल जायेगी तो मेरी दृष्टि में वह मूर्खता ही है। हमारे हाथों उसकी हार निश्चित है। आप लोग जानते भी होंगे कि उसके पास अब प्रशिक्षित सेना भी नहीं है। जो सेना थी वह हटा ली गयी। उसपर मुझे दया आता है।''

एक सिपाही ने कहा ''मालिक, आप इस गलतफ़हमी में मत रहिये कि वे एक साधारण स्त्री हैं। उनकी वीरता हमने स्वयं अपनी आँखों देखी। प्रजा भी उनके लिए मर-मिटने' तैयार है। अपने राज्य की रक्षा के लिए वे कुछ भी करने को तैयार हैं। सच कहा जाए तो ऐसी असाधारण धैर्य-साहसवाली स्त्री को हमने आज तक नहीं देखा।'' सर हाग रोज ने हँसते हुए कहा ''असाधारण धैर्य-साहसवाली रानी मायूसों को धमकाती है, निस्सहायों पर अपना रोब जमाती है। आख़िर वह करती क्या है ? आपकी दृष्टि में वह असाधारण वीर-शूर नारी लगती होगी। किन्तु युद्ध-क्षेत्र में उतरकर युद्ध करना बिल्कुल ही अलग बात है। कब तक वह हमारी तोपों का सामना कर पायेगी ? क्षण भर में उसे और उसकी सेना को राख कर देंगे।''

एक और सिपाही उसके अभिप्राय से सहमत नहीं हुआ। उसने कहा ''सर, हम आपके सेवक हैं। आपके विश्वासपात्र हैं। परंतु हमने जो कहा सौ फी सदी सच है। किसी को भी क्षण भर में तोपों से उड़ाया जा सकता है। परंतु क्या आप सपना देख रहे हैं कि वे आपको ऐसा मौका देंगीं। आप तोपों से लैस जायेंगे तो वह भी तोपों सहित ही युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश करेंगीं।''

''उसके पास कितनी तोपें होंगीं ?'' हाग रोज ने पूछा। बेचारे सिपाहियों को मालूम नहीं था कि जान बूझकर ही रहस्य जानने के उद्देश्य से ही हाग रोज यह प्रश्न कर रहा है।

''हमने गिना नहीं। सब तोपें प्रदर्शित नहीं हुई। वे सारी की सारी तोपें गोले-बारूद की सामग्री रखे जानेवाले गोदाम के पास ही कहीं हैं। यह गोदाम राजभवन की पूर्वी दिशा में है।'' एक वृद्ध सिपाही ने कहा।

हाग रोज ने रेखाचित्र को देखते हुए कहा ''अर्थात जिस जगह के बारे में तुम कह रहे थे, वह वही मंडप है, जिसके बग़ल में बरगद का वृक्ष भी है। उसी के बगल में गोले-बारूद की सामग्री का गोदाम भी है। यही न ?''

स्थानीय सिपाहियों ने एक-दूसरे को देखा। उनकी आँखों में यह भाव स्पष्ट झलक रहा था कि अनजाने में राजभवन का यह रहस्य उसे बताकर हमने बड़ा अपराध किया।

''यजमानों के प्रति विश्वासपात्र होकर रहना आपकी रीति है। क्या भूल गये कि यजमानों को आप अपने माता-पिता समान गौरव देते हैं। परंपराओं से चली आती हुई यह आपकी नीति है, आपका संप्रदाय है। कंपनी आपका मालिक है। आप लोगों को खाना, कपड़ा देकर पालती है। उसकी सहायता करना आपकी जिम्मेदारी है। आप अगर अपनी जिम्मेदारी सही रूप से संभालेंगे तो आपको बहुत इनाम भी मिलेंगे।'' कहते हुए उसने सिपाहियों की सराहना की और उन्हें सोने के सिक्के दिये।

* * *

रानी लक्ष्मीबाई ने राजभवन में सेनाधिपतियों व पुर प्रमुखों को संबोधित करते हुए कहा ''बंधु मित्रो, सज्जनो, भाइयो, हमारे नगर में कंपनी के एक कार्यालय का ध्वंस करके आपमें से कुछ लोग समझ रहे हैं कि कंपनी का पिंड छूट गया, हमें स्वतंत्रता मिल गयी। किन्तु ऐसा समझना आपकी भूल है। सात समुद्रों को पार करके आये वे एक-दो चोटों से घबरानेवाले नहीं है। जोंक की तरह रक्त चूसने के बाद ही वे हमारी मातृभूमि को शायद छोड़कर जाएँ। वे इतनी आसानी से यहाँ से नहीं जाएँगे। समाचार भी प्राप्त हुआ कि वे झान्सी की तरफ़ बढ़े चले आ रहे हैं। इस स्थिति में हम क्या करें औड़ हमारा कर्तव्य क्या हो, प्रकाश डालिये। मैं आपकी सलाहों



की प्रतीक्षा में हूँ।'' झान्सी ने गंभीर स्वर में कहा।

सभिक चुप रहे। कुछ समय तक फैली चुप्पी को तोड़ते हुए राजकुटुंब के एक वृद्ध ने कहा ''देवी, हम आपको सलाहें देने नहीं आये। आपकी आज्ञाओं का पालन करने आये हैं।''

''बहुत प्रसन्न हुई। आप लोग इस भूमि पर जन्मे वीर कुमार हैं। अपनी मात:भूमि की लाज रखने के लिए रक्त तर्पण देकर अपनी मातृभूमि को पुनीत करने के लिए नहीं पिछड़ेंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।'' आवेश-भरे स्वर में रानी ने कहा।

''आपने बिल्कुल सही कहा। हम आपकी आज्ञा की पालन करने में कोई कसर नहीं रखेंगे।'' सभी ने मुक्तकंठ से घोषणा की।



"मातृभूमि की रक्षा या मरण ? जब यह युद्ध छिड़ेगा, तब हमें मरण के लिए सन्नद्ध होना होगा" और जोशीले स्वर में लक्ष्मीबाई ने कहा।

"हम इसे अपना भाग्य समझते हैं माते" सभिकों ने और आनंदित हो कहा। झान्सी को बहुत समय तक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ी। पंद्रह दिनों के अंदर ही शत्रुसेना के आने का पता लग गया। शिबिरों से निकलकर झान्सी की सेना क़िले के सामने इकट्ठी हो गयीं। रानी ने भवन के ऊपर खड़े होकर सैनिकों को उनका कर्तव्य बताया। सैनिकों ने सैनिक वस्त्र पहन लिये और अश्वों पर सवार होकर तेज़ी से आगे बढ़े। जयजय नाद करते हुए वे सब झान्सी बाई के पीछे -पीछे चले।

पूरा दिन भयंकर युद्ध हुआ। सायंकाल हुआ। युद्ध भूमि में व्याप्त धूलि के कारण सूर्यबिंब भी पूरी तरह से दिखायी नहीं पड़ा। धूलि के मेघों के छंट जाने के बाद देखा गया कि शत्रु सेना पीछे हट गयी।

"हमारी माता झान्सी लक्ष्मीबाई ज़िन्दा-बाद" हज़ारों सैनिकों व प्रजा ने ज़ोर -ज़ोर से नारे लगाये।

रानी भवन लौटीं और शयन-मंदिर में पहुँचीं। वहीं उन्होंने देखा कि रत्नों से सुसज्जित शय्या पर उनका दत्तक पुत्र सो रहा है। परिचारिका के लाये दीप की कांति में रानी अपने पुत्र के प्रशांत वदन को निहारती रही।

बाद वे घायल सिपाहियों के पास गयीं। पास रहकर उनकी सही चिकित्सा करवायी। फिर वे घायल घोड़ों के पास गयीं। अश्व पालकों के द्वारा उनके बारे में जानकारी प्राप्त की। प्रातःकाल तक बिना सोये इन्हीं कार्यक्रमों में मग्न रहीं।

सूर्योदय होते ही पुनः युद्ध आरंभ हुआ। अब झान्सी के सैनिकों को तलवारों और बंदूकों का ही नहीं बल्कि तोपों का भी सामना करना पड़ा। शत्रु पक्ष में हज़ारों सैनिक मारे गये। सूर्यास्त के बाद भी युद्ध होता रहा। हठात् आकाश में भयंकर अग्नि दिखायी पड़ी। ठीक आधी रात को राजभवन से फूटी तोप के गोले से सर हाग रोज का प्रधान सेनाधि-कारी मर गया। सेनाधिपति चिल्लाता रहा "रानी स्वयं यह काम करा रही है"।

इस आकस्मिक घटना को देखकर सर हाग रोज स्तंभित रह गया। थोड़ी देर के बाद वह संभल गया और अपना युद्ध-व्यूह बदल दिया।

दूसरे दिन नगर के सैनिकों से आधी सेना लड़ती रही और शेष आधी सेना राजभवन की पूर्वी दिशा की ओर बढ़ी। झान्सी की सेना के अधिकारीगण इस विषय से अनभिज्ञ रहे। झान्सी के प्रधान द्वार की सुरक्षा में ही झान्सी की सेना निमग्न रही।

अकस्मात् भूमि को भी कंपा देनेवाली ध्वनि सुनायी पड़ी। राजभवन का पूर्वी क्षेत्र अग्निपर्वत की तरह फूट पड़ा। पत्थर आदि आकाश में उड़े। कानों को फोड़नेवाली ध्वनियाँ बहुत समय तक प्रतिध्वनित होती रहीं।

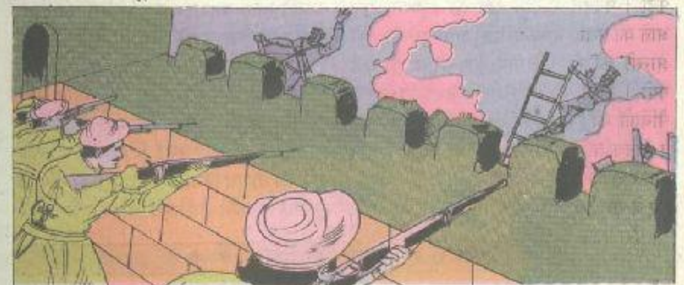
गोले-बारूद की सामग्री जिस गोदाम में थीं, उस गोदाम को शत्रुओं ने तोप से उड़ा दिया। अपनी ही सेना के स्थानीय अधिकारियों को बख़्शीश देकर जान लिया कि गोले-बारूद की सामग्री कहाँ है। विशाल बरगद का वृक्ष तथा बबूल के पेड़ जल गये। बहुतों की जानें गयीं।

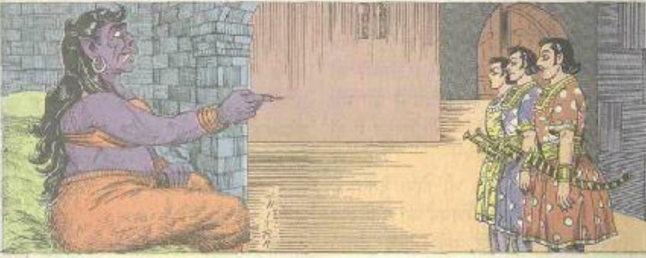
झान्सी की सेना एक तरफ युद्ध करती रही पर राजभवन में विषाद के बादल छा गये। इतने में एक शुभ समाचार मिला कि नाना साहेब का पूर्व सेनानायक तांतियाटोपी रानी की रक्षा के लिए आ रहा है।

क्रमशः ब्रिटिश सेनाएँ राजभवन के निकट पहुँच गयीं। परंतु वे अंदर घुस नहीं पायीं। तोपों के शिकार हुए शिथिल भवन की मरम्मत रातों रात करवायी गयी। वहाँ सैनिकों का कड़ा पहरा रखा गया। ब्रिटिश सैनिक उनपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ ले आये। डिक, मैकेल जान, नानस, फाक्स नामक चार सैनिक अधिकारी सीढ़ियों पर चढ़ते गये। पर बंदूकों से वे छोटे-से पक्षियों की तरह भून दिये गये गये। वे नीचे गिरकर मर गये।

शत्रुसेना मुड़कर जब प्रधान द्वार के पास पहुँची तब दूसरे ही क्षण तुरही की ध्वनि सुनायी पड़ी। साथ ही क़िले के बुर्ज़ों से तोपों के गोले शत्रुसेना पर बरसाये गये। वहाँ अग्नि ज्वाला की तरह प्रज्वलित हुई। भयंकर ध्वनियों के साथ गूँजते हुए वातावरण में खलबली मच गयी। तरह तरह के आयुध शत्रु-सेना पर फेंके जाने लगे। ब्रिटिश सेना को यह कहकर सावधान किया कि वे तुरंत वहाँ से चली जाएँ।

- सशेष





बोलनेवाला फल

एक राजा के पास अनगिनत गायें थीं । हर रोज़ पशु-पालक उन्हें पहाड़ी प्रांतों में चराने ले जाया करते थे । किन्तु शाम को जब वे लौटते थे, तब गायों की संख्या कम हो जाती थी । राजा ने बड़ी सावधानी बरती, बहुत ही सुव्यवस्थित रूप से आवश्यक प्रबंध किये, फिर भी गायों का गायब होना जारी रहा । पशु-पालकों से राजा ने पूछा कि ऐसा क्यों हो रहा है । उन्होंने कहा ''हम बड़ी ही सावधानी से पहरा दे रहे हैं । गायों को हम अपनी आँखों से कभी भी ओझल होने नहीं देते । हमने आज तक किसी को गायों के पास आते हुए भी नहीं देखा । मालूम नहीं गायें कैसे गायब हो रही हैं ।'' राजा को लगा कि अवश्य ही इसके पीछे कोई रहस्य है । अपने तीनों बेटों को गायब होते हुए गायों के बारे में जानकारी पाने के लिए जंगल भेजा ।

राजकुमारों ने दिन भर यात्रा की और एक अरण्य में पहुँचे । उन्होंने एक विकृत आकार की एक स्त्री को देखा । उस स्त्री ने उनसे पूछा, ''बेटों, कहाँ जा रहे हो ?''

राजकुमारों ने चिढ़ते हुए कहा ''हम कहीं भी जाएँ, इससे तुम्हारा क्या मतलब ? तुम चलती बनो ?''

वह स्त्री अपने आप बड़बड़ाती हुई चली गयी । राजकुमार वहाँ से निकले और एक क़िले में पहुँचे । उन्होंने देखा कि उनकी गायब गायें वहाँ बंधी पड़ी हैं । और अंदर गये तो उन्होंने सोयी पड़ी एक बूढ़ी राक्षसी को देखा। उनकी हलचल से वह राक्षसी जाग उठी ।

राजकुमारों ने कहा ''दादी, कोई काम हो तो दिलाना, हम यही रहेंगे ।'' उन्होंने सोचा कि इस राक्षसी से गायों को छुड़ाकर ले जाना इतना आसान काम नहीं है । इसलिए उन्होंने काम का बहाना किया और मौक़ा पाकर गायों को छुड़ाकर ले जाने की उन्होंने योजना बनायी ।

पचीस वर्ष पूर्व प्रकाशित 'चन्दामामा' की कहानी

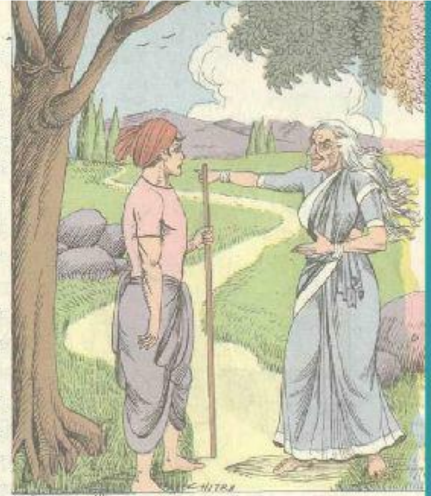
राक्षसी ने जान लिया कि वे गायों के लिए ही यहाँ आये । वह बड़ी ही चालाक थी । शारीरिक शक्ति उसकी घट गयी इसलिए अपने मायावी उपायों से शत्रुओं को मार डालती रहती थी । उसने राजुकमारों को भी मारने का निश्चय करके उनसे कहा ''अच्छा बेटों, गायों का दूध दुहने का समय हो गया । जाओ और दूध दुहकर ले आओ । कल से तुम ही लोग गायों को पालो-पोसो''।

राजकुमार दूध दुहने चले गये । बरतनों में दूध भरकर ले आये । राक्षसी ने उन्हें फिर से बुलाकर कहा ''बच्चो, भूख लगती होगी । मालूम नहीं, कब खाया होगा । यह दूध पीकर अपना पेट भर लेना ।'' उसने विष से भरे तीन बरतन उन्हें दिये । राजकुमार यह तथ्य जानते नहीं थे । उन्होंने दूध पी लिया और वहीं के वहीं मर गये । राक्षसी ने उन्हें एक संदूक में छिपा दिया ।

लंबा अर्सा गुज़र गया, फिर भी राजकुमार नहीं लौटे । राजा को चिंता खाये जा रही थी । राजा के यहाँ गोविंद नामक एक युवक पशु-पालक था । उसने साहसपूर्वक राजा के पास आकर कहा कि मैं राजकुमारों व गायब गायों का पता लगाकर आऊँगा । राजा ने उसे जाने की अनुमति दी ।

गोविंद भी उसी दिशा में गया, जिस दिशा में राजुकमार गये । वही विकृत आकार की स्त्री उसे दिखायी पड़ी । उसने पूछा ''कहाँ जा रहे हो बेटे''।

गोविंद राजकुमारों की तरह उस स्त्री पर नाराज़ नहीं हुआ । उसने सोचा कि शायद गायों और राजकुमारों के बारे में यह स्त्री



जानती हो, इसलिए उसने अपने काम का विवरण दिया ।

उस स्त्री ने कहा 'थोड़ी दूर और जाओगे तो तुम्हें एक क़िला दिखायी देगा । उसमें एक चालाक राक्षसी रहती है । मेरी बहन की मदद लेकर उसी ने राजा की गायों को चुराया । जरूरत पूरी हो जाने के बाद उसने मेरी बहन को मार डाला । अब तक उसने तुम्हारे राजा के बेटों को भी मार डाला होगा । मैं पहले ही उनसे यह रहस्य बताना चाहती थी पर उन्होंने मेरी कोई न सुनी और मुझसे चिढ़कर चले गये''।

गोविंद ने पूछा ''तुम्हारी बहन कौन है ? उस राक्षसी को हमारी गायों को चुराने की क्या जरूरत आ पड़ी ?''

उस स्त्री ने कहा ''वह राक्षसी बूढ़ी है ।



इस बुढ़ापे में पेट भरना उसके लिए कठिन हो गया। तुम्हारे राजा की गायों पर उसकी दृष्टि पड़ी। मेरी बहन मंत्र-तंत्र जानती है। उस राक्षसी ने मेरी बहन से दोस्ती की। उसने मेरी बहन से वादा किया कि आधी गायें तुम्हें दे दूँगी और मेरी बहन ने उसकी बातों का विश्वास करके गायें गायब कर दीं। उन्हें अपने क़िले में बंद किया। फिर अपनी ज़रूरत पूरी होने के बाद मेरी बहन को मार डाला। मैं अपनी बहन की हत्या का बदला लेना चाहती हूँ। मैं तो बूढ़ी हूँ। मुझमें अब मंत्र-तंत्र की शक्तियाँ नहीं रहीं। मेरा एक ही लक्ष्य है और वह है उस राक्षसी से बदला।''

गोविंद ने सब कुछ सुनने के बाद कहा ''कोई उपाय हो तो बताओ, जिससे मैं राजकुमारों और गायों को राक्षसी से छुड़ा लूँ, बचा लूँ।''

''मेरी मंत्र-शक्तियाँ नहीं रहीं, फिर भी मेरे पास दो वस्तु बाकी हैं।'' कहती हुई उसने एक फल और तीन पत्थर गोविंद के हाथ में रखे और उस विकृत रूप की स्त्री ने कहा ''यह फल पहले ही तुम पर आनेवाली विपत्ति के बारे में तुम्हें बता देगा। यह बोलनेवाला फल है। जब इसकी जरूरत नहीं होगी तब इसके अंदर का बीज निकालो, पानी से रगड़ो, मरे हुए राजकुमारों पर छिड़क दो तो फिर से वे जिन्दा हो जाएँगे। इन पत्थरों को नीचे फेंको तो तुम्हें जो चाहिये वह मिलेगा। मुझे विश्वास है कि तुम राक्षसी को मार पाओगे। मुझे विश्वास है कि तुम यह काम कर पाओगे। तुम्हारा काम भी सफल होगा और मेरा लक्ष्य भी पूरा होगा।'' उस बूढ़ी की दी हुई वस्तुओं को लेकर गोविंद क़िले की तरफ़ बढ़ा। क़िले के अंदर जाने के बाद वह राक्षसी से मिला और कोई काम सौंपने की उससे विनती की। राक्षसी जान गयी कि यह भी गायों के लिए आया तो उसने कहा ''ठीक है, मेरी गायों की देखभाल करते रहना।'' फिर वह अंदर गयी और दूध ले आकर बड़े ही प्यार से उसे पीने के लिए कहा।

''पीना मत। उसमें विष है'' फल ने गोविंद को सावधान किया। राक्षसी की आँख से बचाकर गोविंद ने उस दूध को फेंक दिया। राक्षसी को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि दूध पीने के बाद भी वह जिन्दा है तो उसने कहा ''वहाँ खाट है। बहुत थक गये होगे। जाओ और सो जाओ''।

''सोना मत। खाई में गिर जाओगे'' फल ने फिर से उसे सावधान किया। राक्षसी के चले जाने के बाद गोविंद ने खाट उठायी और देखा तो वहाँ काँटों से भरी गहरी खाई है। दूसरी बार भी वह मौत से बच गया, इसपर उसे खुशी हुई।

गोविंद ने राजकुमारों को क़िले भर में ढूँढा। उसे वह पेटी दिखायी पड़ी, जिसमें मृत राजकुमार छिपाये गये थे। विकृत आकार की स्त्री की बहन के शव का पता नहीं चला। राजकुमारों के शवों को ढोकर ले जाना असंभव है। इसलिए उसने निर्णय कर लिया कि अब फल की आवश्यकता नहीं होगी। उसमें से बीज निकाला, जल से खूब रगड़ा और उस जल को राजकुमारों पर छिड़का। वे तुरंत जीवित हुए और गोविंद को पहचान लिया।

फिर चारों गायों की शाला में गये। पशुओं को छुड़ाया और उन्हें हाँकते हुए क़िले के बाहर आ गये। गोविंद ने विकृत आकार की स्त्री को खोजा, पर वह कहीं नहीं मिली।

इतने में राक्षसी नींद से जागी। उसे संदेह हुआ। पशु शाला गयी तो देखा कि वहाँ गायें नहीं हैं। उसे मालूम हो गया कि यह गोविंद का ही काम है। वह चिल्लाती हुई क़िले के बाहर आयी।

राजकुमार और गोविंद ने राक्षसी की चिल्लाहटें सुनीं। वह लंबे-लंबे पग भरती हुई उनके समीप आने लगी। गोविंद को उन पत्थरों की याद आयी, जो उसके पास ही थे। उसने एक पत्थर फेंका और चाहा कि वहाँ काँटे बिछ जाएँ।

काँटों में फंसी बूढ़ी राक्षसी बड़ी मुश्किल से बाहर आ पायी। गोविंद ने एक और पत्थर फेंका। राक्षसी इस बार आग के बीच फंस गयी। जब तक वह आग नहीं बुझी तब तक राक्षसी एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ा सकी। इस बीच गोविंद और राजकुमार बहुत दूर तक चले गये।

फिर एक और बार राक्षसी को अपने निकट पहुँचते हुए देखकर गोविंद ने तीसरा पत्थर फेंका। वह जाकर एक नहर में गिर गयी। नहर उमड़ने लगी। फिर भी राक्षसी पानी में उतरी और पार करने की कोशिश करने लगी। किन्तु प्रवाह बढ़ता गया और उसमें राक्षसी बह गयी।

राजा उसके काम पर बहुत ही खुश हुआ और उसका बड़े पैमाने पर सत्कार किया।

